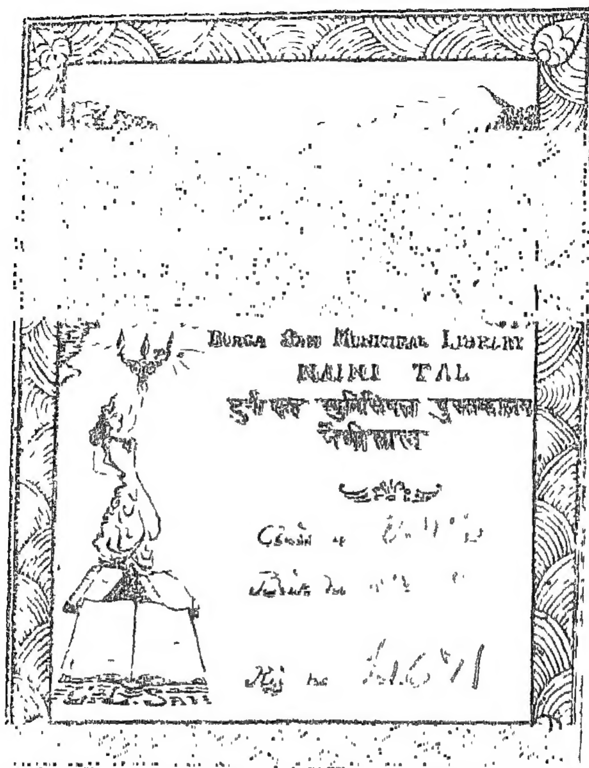

Durga Sah Municipal Library
Naini Tal
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल

पंडित सुधाकर पाण्डेय का प्रस्तुत उपन्यास, यदि उपन्यास के पर्यायवाची गुजराती शब्द का प्रयोग करें तो सचमुच 'नवल-कथा' है। यद्यपि पाठशालाओं और विद्यालयों की पृष्ठ-भूमि में छात्रों और अध्यापकों के जीवन पर अनेक उपन्यासों की रचना हो चुकी है तथापि प्रस्तुत उपन्यास उस कोटि में परिगणित नहीं किया जा सकता, कारण जहाँ वैसे उपन्यासों का प्रधान-विषय प्रेम रहा है वहीं प्रस्तुत उपन्यास का उद्देश्य भारतीय विद्यालयों में स्थित राजनीतिज्ञ अध्यापकों की करतूतों का चित्र उपस्थित करना है। अपने इस उद्देश्य में लेखक की सफलता का प्रमाण यही होगा कि इसके एक-एक चित्र में बीस बीस व्यक्ति अपना प्रति-बिम्ब देखने लगेंगे और यही तथ्य इस बात का भी प्रमाण होगा कि कथा सर्वथा काल्पनिक है।

प्रस्तुत उपन्यास का लेखन कौशल भी अपूर्व है। निबन्ध से लेकर प्रयोग वादी कविता तक की विविध साहित्यिक शैलियों में इसकी रचना हुई है। आज हमारे विद्यालयों की जो दशा है उनमें सुधारार्थ जनमत जाग-रित करना इसका एक उद्देश्य है। आशा है प्रस्तुत उपन्यास को अपने इस उद्देश्य में भी सफलता प्राप्त होगी।

—'रुद्र काशिकेय'

स्वार्थ
और
सिद्धि

सुधाकर पाण्डेय

स्वार्थ और सिद्धि

[मौलिक सामाजिक उपन्यास]

सुधाकर पाण्डेय

सिंहल साहित्य निकेतन
जुमेराती गेट, भोपाल

प्रकाशक—
रमेश सिंहल,
सिंहल साहित्य निकेतन
जुमराती गेट, भोपाल।

मुद्रक
रामनिधि त्रिपाठी
[illegible]
वाराणसी।

प्रकाशन तिथि—१ मार्च १९५९।

आवरण—काँजिलाल
प्रथम संस्करण—१९५९।
पृष्ठ संख्या—२२४।
मूल्य—चार रुपये।
विदेश में—दो डालर।

अनुक्रम

स्वार्थ और सिद्धि

प्राक्कथन

बहुरि बंदि खल गन सति भाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ॥
पर हित हानि लाभ जिन्ह केरें। उजरें हरष बिषाद बसेरें॥
हरि हर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से॥
जे परदोष लखहिं सहसाखी। पर हित घृत जिन्हके मन माखी॥
तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा॥
उदय केत सम हित सबही के। कुंभ करन सम सोवत नीके॥
पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं॥
बंदउँ खल जस सेष सरोषा। सहस बदन बरनइ पर दोषा॥
पुनि प्रनवउँ पृथु राज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना॥
बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही। संतत सुरानीक हित तेही॥
बचन बज्र जेहि सदा पिआरा। सहस नयन पर दोष निहारा॥

उदासीन अरि मीत हित, सुनत जरहिं खल रीति।
जानि पानि जुग जोरि जन, बिनती करइ सप्रीति॥

मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा॥
बायस पलिअहिं अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा॥
बंदउँ संत असज्जन चरना। दुख प्रद उभय बीच कछु बरना॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं॥
उपजहिं एक संग जगमाहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू॥

स्वार्थ और सिद्धि

भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि ब्याधू॥
गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥

भलो भलाइहिं पै लहइ, लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरताँ, गरल सराहिअ मीचु॥

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा॥
तेहिं तें कछु गुन दोष बखाने। संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने॥
भलेउ पोच सब बिधि उपजाए। गनि गुन दोष बेद बिलगाए॥
कहहिं बेद इतिहास पुराना। बिधि प्रपंचु गुन अवगुन साना॥
दुख सुख पाप पुन्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु माहुरु मीचू॥
माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा॥
कासी मग सुरसरि क्रमनासा। मरु मारव महिदेव गवासा॥
सरग नरक अनुराग बिरागा। निगमागम गुन दोष बिभागा॥

जड़ चेतन गुन दोष मय, बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि बिकार॥

—तुलसीदास



...★

अपने उन अध्यापक मित्रों को
जो ब्राह्मण होकर भी पद के लिए
उतने ही लालायित रहते हैं
जितने
कामी नारी के लिए,
लोभी मुद्रा के लिए,
और
पाखंडी विवाद के लिए,
इस नीयत से
कि वे स्वर्ग में विचरण करें
और
अमृत का पान करें।

★...

श्री गणेशाय नमः

***

जब किसी देश पर स्थायी विपत्ति आनेवाली होती है तो उस देश का ज्ञान भ्रष्ट हो जाता है। विद्याव्यसनीपदाभिलाषी हो जाते हैं, ब्राह्मण भोगी हो जाते हैं, ज्ञानी विलासी हो जाते हैं। अभिलाषा, भोग और विलास के वात्याचक्र में देश के भविष्य के भाग्य-विधाता छात्र उदण्ड हो जाते हैं, वे पटन-पाठन ज्ञानार्जन का नहीं, नाना जांजालिक षड्यंत्रों का सर्जन करते हैं। अराजकता तथा अनुशासनहीनता के कीड़े उनके चरित्र को उसी प्रकार चाटते रहते हैं जैसे अरक्षित पुस्तकों की आलमारी में अज्ञात रूप से दीमक। भ्रष्ट चारित्रिक क्षमता मंगल-मूलक भविष्य की नियामिका नहीं हो सकती।

किसी राष्ट्र का ब्राह्मण जब षड्यंत्र स्वस्वार्थ के लिए करता है तो उसकी शक्ति और श्रद्धा-प्रगति की मूलभूत नियामक शक्तियों-की उँगलियाँ उसी प्रकार कटवा ली जाती हैं जैसे कभी एकलव्य की इस भूमि पर कटवायी गयी थीं।

आज कुछ ऐसी ही स्थिति और परिस्थिति राष्ट्र के सम्मुख उपस्थित है। पतन की राह पर चलनेवालों की पग-ध्वनि से निर्लज्जता जीवन पा रही है; उनके अभियान-गान से साधना और सिद्धि हिमगिरि के अदृश्य गह्वर में शरण लेने जा रही हैं। तप और शांति के आश्रम आज आहत हरिणों की भांति जीवन की पुकार अरण्य में लगा रहे हैं। इस धरती की अपनी परम्परा आज संकटापन्न है।

स्वार्थ और सिद्धि

जब-जब इस देश का ब्राह्मण शासक हुआ है तब-तब इस देश में अंधकार छाया है, निरपराधों की हत्याएँ हुई हैं, क्षत्रिय विलासी हुए हैं; व्यापारी नफाखोर हुए हैं और सेवक अकर्मण्य तथा अनुशासनहीन। शिक्षा की वर्त्तमान व्यवस्था ऐसे संयुक्त संक्रामक भ्रष्ट भविष्य का निर्माण कर रही है जिससे ऐसा आभास लगने लगा है कि यदि देश के भाग्य विधाता सजग नहीं हुए तो निश्चय ही कल देश विश्व की सर्वाधिक शांति-शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित नहीं रह पायेगा।

साहित्यकार भी ऐसे ही प्राणियों में होता है जो पीड़ा में पलकर भी रसकी अजस्र वर्षा केवल वर्त्तमान जीवन की धरती पर ही नहीं करता अपितु भविष्य के पथ को प्रभा से उसी प्रकार दीप्त करता है जैसे शरद का पूर्नो आकाश और धरती को। रूप की कुंजगली में आज साहित्यकार जीवन की चेतना के मूल लय से विलग हो आत्मा के अभ्युदय का नहीं; जीवन की मुक्ति का नहीं अपितु मनुष्य निर्मित शृंगार-प्रसाधनों का विज्ञापक बन गया है। वे नाना प्रकार के प्रयोग कर रहे हैं। ऐसा लगता है कि प्रयोगों के मेले में रस की दुकानों से शोरूम अधिक खोलने में ही वे अपने पुरुषार्थ का इति श्री करते जा रहे हैं। 'शो रूम' का आकर्षण तभी अच्छा माना जा सकता है जब उसका प्रभाव श्री वृद्धिकर्त्ता होता है। वह तो आकर्षण का एक कारण मात्र होता है जीवन का निमित्त नहीं।

जब-जब साहित्य जीवन से विलग हो अत्यन्त की मृग-तृष्णा से रस के घन बरसाने आया है तब-तब न केवल साहित्य तिरस्कृत हुआ है, अपितु साहित्यकार भी। घृणा और विद्र

रचना की बाढ़ में भी जीवन के जो तीर्थ नहीं डूबते, उनमें साहित्य महातीर्थ के रूप में प्रतिष्ठित है। किंतु आज हमारा साहित्यकार संक्रमण की इस उत्क्रांति में, जब जीवन की नाव में पानी प्रवेश करने लगा है; डाड़ों से अपनी कला बाजियाँ सँवार रहा है। कला कभी एकांत में नहीं सँवरती। उसके लिए तो भीड़ चाहिए, भीड़ का अनुभव चाहिए। भीड़ में पिस जाने वालों को कोई भी नहीं देखता; रौंदने वाले पैर भी नहीं। देखा तो वह जाता है जो रेले में रहकर भी गिरने वालों को उठाता है और स्वयं बचकर चला आता है। संक्रमण में साहित्यकार की कुछ ऐसी ही स्थिति होती है। इस स्थिति और परिस्थिति में रह कर भी जो लोग घृणा एवं कुंठामय, कामोद्दीपक साहित्य सजाने के काम में लगे हुए हैं; उनकी निद्रा भंग करना भी कोई अच्छा काम नहीं कहा जा सकता; वे तो कंचन और काया के प्रेमी हैं। वे इनके नशे में झूम कर कुछ मनचलों को झूमा कर उसी प्रकार लुभाने का प्रयत्न जनतंत्र में करते हैं जैसा प्रयत्न एक छत्र शासन में दरबारों में कुछ चारण और बात-चतुर किया करते थे। हाँ; वैज्ञानिक प्रबन्धन के इस युग में कुछ मध्यस्थ अवश्य उनके बीच आ गए हैं।

जो कुछ भी हो, ऐसे तैसों की बातें न कर इस पुस्तक के संबंध में कुछ काम की बातें कहनी हैं।

'साँझ सकारे' लोगों को पसंद आया था। 'स्वार्थ और सिद्धि' उन्हें तो शायद न पसंद आये जिनका सत्य मेरे जीवन के अनुभव के विलोम आधार पर प्रकाशित हुआ है। सत्य का आकर्षण वैचित्र्य से अधिक आश्चर्यजनक होता है इसलिए रसमय

भी, क्योंकि उसका हृदय से लगाव होता है। हृदय-संबंध की स्थापना में कटूक्तियाँ अपना विशेष प्रभाव रखती हैं, तिक्त होते हुए भी मधुर। माधुर्य की उपासना मेरे जीवन की सहज लालसा रही है केवल इसलिए ही नहीं कि ब्राह्मण हूँ, अपितु साहित्य के गुण-धर्म का उपासक भी रहा हूँ। यदि इससे लोग कुपित होते हैं तो मैं उनकी वंदना करता हूँ, भयवश नहीं केवल इसलिए कि इसी बहाने कुछ पढ़ तो लेंगे।

इसमें चित्रित चरित्र काल्पनिक हैं। अगर मेरी कल्पना में कोई अपना चित्र पाता है तो इसमें मेरा दोष नहीं; चित्र की महत्ता का दोष है।

अपने पाठकों पर मुझे विश्वास है। वे त्रुटियों के लिए मुझे क्षमा करेंगे; उसी प्रकार जैसे करते रहे हैं।

विजया दशमी, २०१५ वि०, सुधाकर पाण्डेय
गोलादीनानाथ, काशी।

धीरज धरम मित्र अरु नारी....

***

बड़ी देर से उमस थी। आकाश में काले, लाल-पीले और चित-कबरे बादलों के केतु ऐसे सट कर मिल गए थे जैसे कोई नया रंग छा गया हो। फिर भी चाँद रह रह कर झाँक रहा था जैसे प्रलय की झंझा में भी जीवन के प्रति मनु की आस्था। आकाश और धरती दोनों का स्पर्श करने वाली हवा भी गम की गंध से आनेवाली भावी का संकेत फुस-फुसा कर दे रही थी। संध्या रात्रि का प्रस्थान लेकर जा चुकी थी और रजनी की पगध्वनि सुन पड़ रही थी। बादल गड़गड़ाए और थोड़ी दूरी से एक जन रव प्रत्याशित कानों में उसी प्रकार चुभ उठा जैसे काटा गड़ कर टूट जाने पर।

एक बहू आयी थी, पहली-पहली बार, अपने श्वसुर के आश्रम पर, अपने पति के साथ। अभी अभी कुछ दिन पूर्व उसकी शादी हुई थी; उसे अपने भाग्य पर बड़ा गर्व था। केवल इसलिए नहीं कि उसका पति आवश्यकता से अधिक योग्य है अपितु इसलिए कि महान ज्ञान की साधना स्थली महर्षि-मंदिर का उसका श्वसुर महामान्य कुलपति है। और भी; उसके पति के पितामह भी ज्ञान क्षेत्र के माने महापंडित हैं। स्वाराट में विचरण करने वाले ब्राह्मणों की दुनिया में अमृत का सहज सौभाग्य भला किसे न भाग्यशाली सोचने के लिए बाध्य कर देगा।

बहू ने देखा, उसी समय उसके श्वसुर और सास एकांत में गंभीरता पूर्वक कोई उलझी गुत्थी सुलझा रहे थे। कोई मन की जकड़ी गांठ खोल रहे थे। उनके सतत आभा से प्रदीप्त सोने से चेहरे पर नसें ऐसी उभड़ आयीं थी जैसे किसी ने लाल लकीरें खींच दी हो। वार्ता समाप्त

हुई। पिता जी धीरे-धीरे ऐसे वहाँ से नीचे उतर आए जैसे जीवन का दाँव हार जाने पर कोई ख्यातिलब्ध योधा।

इनके चले जाने के पश्चात माता जी धीरे से बहू के पास आयीं। नौकर को बुलाया। पूछा सामान सब तैयार है?

"कब का ही, माता जी।"

"खाना परोस दिया है, माता जी।"— महराजिन ने कहा।

"नहीं; गाड़ी छूट जायेगी, देर हो गयी है।"—काँपते हुए स्वर में माता जी ने कहा।

"माता जी, आपने तो कहा था कि गाड़ी १०॥ बजे जाती है।"

"गाड़ी का टाइम बदल गया है न, मैं भूल गयी थी।"

बहू समझ नहीं पा रही थी; ऐसा क्या हो रहा है। इसलिए संकोच के भार से दबती चली जा रही थी।

"सामान नीचे गाड़ी पर ले जाकर जल्दी से रखो।" आज्ञा की देर थी; सामान ही क्या था, नौकर ने सब उठा लिया। महराजिन यह कहते हुए बाहर चली आयी कि "माता जी, बहू को बिना खाना खाए जाने देना अच्छा न होगा, पहली बार तो शुभ-अशुभ देख लीजिए।"

माता जी बहू से कुछ कहना चाहती थीं पर कुछ बात ही ऐसी थी कि जो जबान पर आकर लज्जावश पुनः सरक जाती थी। फिर भी थोड़े ढाढ़स से कहा, 'बेटी, उठो आज अभी जाना है।'

बहू ने माँ के चरण छुए। माँ आशीर्वाद तक न दे पायी। बहू समझ रही थी कि कोई ऐसा संकट एकाएक घहरा उठा है कि माता जी हमारे मंगल के लिए यही उचित समझती है कि तत्काल यहाँ से हम चले जायँ। माँ का कंठ भर चुका था, आँखों में आँसू मड़रा रहे थे पर जाने वालों की मंगल कामना उन्हे थामे थी। माँ और बहू साथ-साथ नीचे

उतरीं; मौन, शिथिल, मंद गति से। वहा कुलपति टहल रहे थे; कुछ गुनगुनाते हुए और समीप ही उनका एकलौता पुत्र खड़ा था। यद्यपि वे विषाद में आकंठ निमग्न थे पर न जाने कैसे उनके चेहरे पर बिजली सी मुसकान की आभा दौड़ गयी। वहीं पास ही उनका लड़का भी खड़ा था किसी काम से नहीं, ऐसे ही।

"अच्छा, तुम लोग जाओ।"

बहू ने पिता का और पुत्र ने माँ का चरण स्पर्श किया। आशीर्वाद किसी ने नहीं दिया। सब बाहर आए। मोटर का दरवाजा खुला। दोनों बैठ गए। पिता ने द्वार बन्द किया। एक झटके की आवाज लगी, मोटर स्टार्ट हुई। उधर दूरागत प्रबल ध्वनि निकट ही गुंजायमान हो उठी।

दोनों पीछे मुड़े। देखा टीका का सामान थाल में लिए महराजिन खड़ी थी। दोनों के पैर काँप उठे। उधर एक बार ध्यान से देखा और आगे बढ़ते हुए माता जी ने कहा कि "थाल मन्दिर में रख दो।"

दोनों मौन थे। घर के भीतर घुस भी न पाए थे कि मन्दिर के कुछ आचार्य दौड़े हुए आए। उनकी पगध्वनियाँ इतनी विकंपित ध्वनि लिए हुए थीं मानो भूचाल से धरती काँप रही हो।

उनकी ओर मुड़कर देखते ही कुलपति के बदन की म्लान ग्लानि प्रातः कालीन सरसिज की भाँति खिल उठी। मुस्कराते हुए उन्होंने घबड़ाए हुए लोगों से पूछा—कुशल तो है न।

उनकी मुस्कान में उस समय उतनी ही सरसता थी जितनी सावन-भादों की झड़ी में, उसमें उतना ही भोलापन था जितना शंकर के विष-पान की मंगल-कामना में।

घबड़ाए लोग सहम गए और कहने लगे, "आपका आज पुतला जलाया गया है, गंगा में उसका प्रवाह किया गया है, अब वे नारा लगाते हुए आपके कुटीर के समीप ही हैं।"

"मुझे तो कोई आँच नहीं लगी। आते हैं तो आने दीजिए।"

"वे उन्मत्त हैं, यहाँ सुरक्षा की कोई व्यवस्था भी तो नहीं है।"

"रक्षा की आवश्यकता तो उन्हें पड़ती है जो मृत्यु से घबड़ाते हैं। और जब तक मेरी अन्तरात्मा निष्कलंक है तब तक मुझे कोई नहीं मार सकता। आज मंदिर के हित के लिए यदि उत्सर्ग की आवश्यकता है तो कुलपति द्वारा ही सबसे पहले दाय चुकाने की परम्परा इस देश में बड़ी प्राचीन है।" इतना वे सहज मुस्कान से कह ही रहे थे कि द्वार पर कुछ उद्दण्ड नारा लगाते पहुँच गए :—

कुलपति; मंदिर छोड़ो
कुल कलंक पति, मुर्दाबाद
आचार्य बहन्तु, जिन्दाबाद
हमारी मांगे, पूरी हों

निकल बे निकल, भीतर छिप के बैठा है; बाहर आ-तुम्हें मजा चखाया जाता है। नहीं जानते; आचार्य बहन्तु के हम शिष्य हैं।

भीतर जितने लोग थे, सब अवाक। पर मुस्कराते हुए गजराज की भाँति कुलपति बाहर आए, उनके पीछे-पीछे उनकी पत्नी। ज्यों ज्यों वे द्वार के निकट आते गए, आवाजें धीमी पड़ती गयीं, कुछ आगे के लोगों ने भीड़ में घुसकर इस भांति अपना मुँह छिपाना शुरू किया जैसे यवनियाँ बुरके से। उन छात्रों में अनेक कामनिष्ठ परिवार के थे। वे आगे आए। उनमें से एक पहाड़ी चूहे की भाँति कूदते हुए नारा नामधारी

कामनिष्ठ ने कुल माता की ओर उंगली उठाकर कहा—अपनी चूड़ियाँ फोड़ डालो, मांग का सिन्दूर धो डालो, तुम्हारे पति को हम लोग जलाकर घाट से अभी लौटे चले आ रहे हैं। विधवा कहीं की।

कुलपति के मुस्कान की आभा और भी प्रदीप्त हो गयी जैसे किसी साधक ने सिद्धि प्राप्त कर ली हो। उन्होंने आवाज दी; आश्रम का फाटक क्यों बंद कर दिया गया है; खोल दो।

कुलमाता टससे मस न हुई।

नाटा चिल्लाया, भीतर सैकड़ों गुंडे बैठे हैं, चलो भागो, नहीं तो यह कलंकी भला फाटक खुलवाता।

फिर तो वे वैसे भागे जैसे छाता देखकर भैंसें। फाटक खुलते-खुलते वहाँ कोई नहीं रह गया था। हाँ; आचार्य बंहतु और जंड़तु आम की छाया में थोड़ी दूर पर दीखे। कामनिष्ठ नाटा भी उनके पास ही था।

वे भीतर आए। वहाँ अनेक थे। कुछ नेक और कुछ गुप्तचर बहंतु मंडल के। कुलपति ने एक बार बड़ी ही तीक्ष्ण दृष्टि से मुस्कराते हुए उनकी ओर देखा।

कोई कहने लगा; कुछ बाहरी लोगों को यहाँ सुरक्षा के लिए रख छोड़ना चाहिए। कुछ ने कहा, पुलिस बुला लेनी चाहिए। कुछ ने कहा, अगर आज्ञा हो तो रात को यहीं हम लोग रह जाय।

"आप अपने अपने निवास पर जाय। आप सबको बड़ा कष्ट हुआ। क्षमा करें। आप सब तो आतमद्रष्टा हैं; जानते ही हैं; जाको राखे साइयाँ···।"

लोग नमस्कार करके एक एक कर चलते बने। आश्रम के कर्मचारी मात्र वहाँ रह गए थे। कुलपति ने कहा, जाओ; तुम सब आराम करो।

दोनों ऊपर आए। दोनों एक दूसरे से कुछ बातें करना चाहते थे पर उनका मौन मुखर नहीं हो पा रहा था, परिस्थिति की गंभीरता से या

चिन्ता की तपन से या उत्तरदायित्व की गुरुता से, या इन सबसे; कुछ कहा नहीं जा सकता। इसी समय महराजिन फिर उनके पास आ पहुँची। काँपते हुए उसने कहा—"भोजन"।

कुलपति ने कहा—"भूख नहीं है, तुम जाकर खा लो।"

"आज बच्चा और बहु गयीं हैं। खा लीजिए; अशुभ होगा। और माँ अन्नपूर्णा का अपमान भी तो।"

"इससे बड़ा"—कहते कहते रुककर कुलपति ने कहा—"हाँ, हाँ, महराजिन थाल लगाओ।"

थाल पर दोनों बैठे।

ममता, आस्था और चिंता का द्वन्द्व उनकी हृदय और बुद्धि में आत्म-चक्र उठा रहा था। उनके चेतना की पांखें भीग चुकी थीं। मन मसोस रहा था। सर्जन की मूल अधिष्ठात्री शक्ति नारी जब अपने मातृत्व के उत्तरदायित्व का अर्घ अपने परमेश्वर के सम्मुख अनायास चढ़ाने के लिए विवश होती है तो आँखों की झारी से गंगा और यमुना झर पड़ती हैं। उनकी आर्द्रता से पति परमेश्वर का कूल-किनारा डूबने ही वाला होता है कि नारी पुनः तरणी बन जाती है।

ऐसी ही स्थिति और परिस्थिति देख कुलमाता ने कहा—"आप भोजन क्यों नहीं करते।"

कुलपति के जड़ हाथों में चेतना आयी। जलपात्र की ओर उन्होंने हाथ बढ़ाया पर हृदय के हिमालय से निकला पवित्र जल बिन्दु स्वयमेव आज अन्नपूर्णा का अभिषेक कर उठा। थाल की ओर हाथ बढ़ाते हुए, उन्होंने कहा, 'तुम भी आरंभ करो।'

दोनों कमरे में आए। देखा महर्षि के चित्र को। बेजान चित्र की आंखें आज न जाने कैसे आर्द्र थीं। उत्तरदायित्व के चैतन्य से कुलपति का सारा शरीर विभूति स्पर्श की भाँति सिहर उठा।

कुलमाला ने मंदिर में देखा; टीका की थाल पड़ी है। वे फूट उठीं। कुलपति की नव जाग्रत चेतना पुनः डूबने लगी, जैसे तूफान के बीच बाढ़ में भंवर पार करते-करते डाड़ा टूट गया हो पर आपत्ति तो सत्य की चट्टान को पारस बना देती है।

"पहली बार बहू मेरे यहाँ आयी और मैं जाते समय टीका भी न कर पायी, न जाने रास्ते में क्या हो।"

"जब तक माँ का पवित्र आशीर्वाद और कुलदेवताओं की शुभ्र छाया उन पर है तब तक अमंगल उन तक फटक ही नहीं सकता।"

मां की ममता न मानी। वह पिघल कर गल रही थी। थोड़ी देर तक तो कुलपति मौन रहे पर अन्ततोगत्वा उनसे मौन न रहा गया।

"आज धैर्य, धर्म मेरी अग्नि परीक्षा ले रहे हैं, इनके ताप से भिन्न एक-एक कर कगार के वृक्ष सिद्ध हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में तुम भी दुःखी होकर मुझे त्रास देना चाहती हो तो दे डालो।"

कुलमाला कांप उठी। पैंतीस वर्ष तक कुलपति के साथ रहकर भी उन्होंने ऐसा कहते उन्हें कभी नहीं सुना। पर न जाने क्यों उनके मुँख से अनायास निकल पड़ा:—"कौन से सुख की कामना से आप यहाँ पड़े हैं। जहाँ अपना अपमान हो; वहाँ नहीं रहना चाहिए।"

"अपना सुख ही तो इस संसार में सब कुछ नहीं है। कर्त्तव्य-निर्वाह में आनेवाली बाधाएँ यदि हमें इस मंदिर को छोड़ने के लिए बाध्य करती हैं तो भला कल संसार क्या कहेगा? आज तो कुछ मुट्ठी भर लोग मुझ पर कलंक की धूल उड़ा रहे हैं। कल सारी दुनिया जीवन भर कहती

रहेगी क्या ? जानती हो ? स्वार्थी, विलासी। और; अतीत की समस्त तपस्या के मुह पर भी कालिख पुत जायेगी। अगर तुम यही चाहती हो तो मुझे स्वीकार है।"

कुलमाता ने कहा—मेरा आशय यह नहीं था।

"तो उठो। बहू के चित्र का टीका करो, सत्य सदा मंगलमय होता है।"

कुलमाता उठ भी न पायीं थीं कि मोटर रुकने की आवाज नीचे आयी। माता ने मंदिर से स्वयं थाल उठाकर बगल के कमरे में जा चित्र टीका। कुलपति भी वहाँ पहुँचे तब तक एक भृत्य ने कहा--गाड़ी ठीक से मिल गयी और कुपे में सीट भी रिजर्व हो गयी।

घड़ी-घंट-घड़ियाल

***

गंगा-यमुना के जल से, गोदावरी-कृष्णा के प्रवाह से हिमालय और विन्ध्य के संरक्षण में निर्मित धरणी में आत्मीयता की इतनी अधिक शक्ति है कि शक, शिथियन, हूण सभी इसके हो गए। गृह तज कर आनेवाले यवन भी इस भूमि से न जा सके, यहाँ अपना घर बना लिया। कर्म और साधना की यह भूमि, विलास का लीला-निकेत प्रकृति के मूल मनुज धर्म के तिरस्कार के कारण बन बैठी। तपस्या के स्थान पर भोग, योग के स्थान पर विग्रह और आग्रह के स्थान पर दुराग्रह पदासीन हुए। मुट्ठी भर [illegible] इस स्वर्ण श्यामला भूमि पर सोने की चोरी के लिए जलदस्यु से आए। कोढ़ का प्रभाव ऐसा फैला कि यहाँ के वे शासक बन गए। उन्हें सोना चाहिए था। डरा कर, धमका कर, मार कर और खाल उधेड़ कर उन्होंने लूट खसोट का खुला बाजार बिना किसी माल के लगा दिया।

वे इतने ही पर न माने। सर्वदा के लिए इस भूमि पर अपना प्रसार करने के लिए वे योजनाबद्ध रूप से लोहे के बल पर देश की चेतना को यंत्र और मनुजता को निर्वीर्य कोलाहल पूर्ण आवश्यकताओं की चिरप्यासी फैक्टरी बनाने लगे। आवश्यकताओं को जीवन धारण के लिए आवश्यक माननेवाले उद्देश्य प्रधान भूमि के लोगों को अनन्त आवश्यकताओं के चक्रव्यूह में इस तरह फाँसा कि देश जीवन शक्ति से जर्जर और हीन होकर आवश्यकताओं की अनन्त लपेट में उसी प्रकार जकड़ दिया गया जैसे अनजाने ही कोई साधनहीन व्यक्ति अजगर की लपेट में।

पर मनु की यह भूमि, राम कृष्ण और बुद्ध का यह कर्म-निकेत, सीता, शकुन्तला और श्रद्धा के मातृत्व से अभिपुष्ट यहाँ की मनुजता, गंगा और यमुना के अमृत प्रवाह से उत्प्रेरित यहाँ की प्रसुप्त चेतना अंगड़ाई लेकर

जाग उठी। स्वर्ग, नर्क में परिवर्तित था, ज्ञान अंधकार में और लोग निर्गम जीवन-यापन को साध्य मान आल्हा गा रहे थे। मुट्ठी भर लोग कौन कहाँ क्या का ज्ञान भूला केवल भटक ही नहीं रहे थे विदेशियों का चश्मा लगा अपने भाइयों को ठग ही नहीं रहे थे अपितु पद के मद के लिए उनका गला काटकर शोषक के द्वार पर जाकर लटका भी आते थे। चेतना थर्रा उठी। पर जागी चेतना ने तो प्रलय से भी हार मानना नहीं सीखा है।

ऋषियों की इस तपस्या-भूमि में लोकमंगल के लिए अनुष्ठान करने वाले तपपूतों का अकाल कभी नहीं पड़ा। हर स्थिति और परिस्थिति में वे रास्ता बनाते चले आए हैं। ऋषि कभी शस्त्र और अस्त्र से नहीं केवल आत्मबल से स्वको स्वयमेव आहुति दे अपना सर हथेली पर रखकर लोक-सुख-शांति और समृद्धि के लिए सदा से आगे बढ़ते रहे हैं। वे भविष्य द्रष्टा और आगम के विधायक भी होते हैं। उन्हें यह ज्ञात रहता है कि उनका युद्ध कितना लम्बा होगा।

इन ऋषियों में एक मन की महानता के कारण लोक मोहन था। पूर्वजन्म में ऐसा कहा जाता है कि उसके तप-सौन्दर्य की आभा देखकर मदन भी मुग्ध हो गया था। उसने लोक-सेवा रत ज्ञान-कर्म और प्रतिभा मंडित अहिंसक सेना के निर्माण का बीड़ा उठाया।

दूसरे की आत्मा महानतामें इतनी विशाल थी कि आकाश उससे प्रति-स्पर्द्धा करता था, फिर भी उसे कभी नाप नहीं पाया। संसार के समस्त महासागर मिलकर भी उससे गहरे कभी प्रमाणित नहीं हो पाए। वह प्रकृति-पुत्र मानव के संतत्व की चेतना का मूलाधार था जिससे धरती के मुक्ति की कामना जीवन की साँस लेती थी। इस संत ने भविष्य की मंगल कामना के लिए वर्त्तमान में उपलब्ध विभूतिमय उपादानों से मुक्ति का अभियान आरंभ किया। कहा जाता है कि पूर्वजन्म में इस तपोनिष्ठ साधक के चरणों पर

जब परम मुक्ति सोल्लास गिर पड़ी; देव मण्डल उस पर अमर सुमनों की वर्षा करने लगे तो इसने उस समय कहा था कि अभी तो मेरी साधना स्वार्थ मूला है । पूर्ण सिद्धि के लिए मैं पुनः मनुज का जन्म लेकर कोटि-कोटि बन्धन विजड़ित निःशक्त मानव की मुक्ति का निःरक्त अनुष्ठान करके पुनः इस लोक में आऊँगा । जब तक मनुजता की मुक्ति न होगी मैं परम पद नहीं चाहता और जा रहा हूँ । उस समय इस सिद्ध की सेवा-भावना से कैलाश काँप उठा था, शेष-शैया थरथरा उठी थी और ब्रह्मा की कारयित्री प्रतिभा शर्मा उठी थी ।

दोनों अन्यतम साथी थे । यद्यपि दोनों का काम दो था, नाम दो था, रास्ता दो था पर दोनों एक दूसरे के लिए थे । एक का काम दूसरे के काम को बल पहुचाने के लिए था । दोनों अपने अनुष्ठान में उसी प्रकार लगे जिस प्रकार सूर्य प्रकाश प्रसारण के कार्य में सदा लगा रहता है ।

महर्षि यह जानते थे कि ऐसी सत्ता के प्रति रोपा गया अहिंसक रण जो जल, थल, नभ, तीनों प्रकार की सेनाओं में विश्वजित है, सहज नहीं है । उसके लिए न केवल एक विशाल जन-सेना चाहिए अपितु वह ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण हो, देश और जनता के प्रति उसमें अडिग उत्सर्ग की भावना हो, ब्रह्मचर्य और विद्या का विरल संयोग अतीत के गौरव के साथ भावी पीढ़ी का जीवन संबल हो । सभी देश के युवक माता का दाय चुकाने के लिए परिकर बद्ध हों और हो उनमें यौवन से सतत प्रदीप्त चेतना का अमल प्रवाह; मुक्ति के लिए ।

इस महान सत्य से अनुप्राणित हो सुरसरि के रम्य तीर पर उन्होंने परम मनोहर अत्यन्त सुन्दर सभी विद्याओं की राजधानी की स्थापना की । देश के रंक से राजा तक का उन्होंने योग लिया; झोपड़ी से महल तक की विभूति का वहाँ उन्होंने श्री लेपित किया । उस प्रदेश के नर-नारियों ने

अपना आवास-निवास और क्षेत्र इस ज्ञान मंदिर के लिए उत्सर्ग कर ज्ञान का देश में ऐसा प्रकाश स्तंभ स्थापित किया जहाँ की ज्ञान-रश्मियां देश के तम-दाह को दिव्यता की किरणों से विकीर्ण करने लगीं।

देश के ज्ञान के ऋषियों का यहाँ मेला लग गया। हजारों रुपये मासिक वृति पाने वाले रोज की आवश्यकताओं की पूर्ति पर यहाँ आकर ज्ञान-यज्ञ के होता बनने लगे। सत्युग के ऋषिकुल, मध्ययुग के नालन्दा और तक्षशिला के इतिहास का एक नया पर्व इस महर्षि ने लिख डाला। नैतिकता, अनुशासन की मर्यादा के मध्य सहस्त्रों युवकों के दैनिक ज्ञान-यज्ञ की यह भूमि मंत्र भूमि हो गयी, देश का ज्ञान-तीर्थ हो गया। जीवन की सद्शक्तियाँ यहाँ की मुक्त वायु में स्वतंत्रता की काकली छेड़ उठीं। इस स्वर से देश में नयी चेतना जाग उठी।

इस आश्रम में शेर, भालू, बिल्ली, चूहे, कुत्ते, लोमड़, बछड़े, काले सर्प, मगर मच्छ सभी आए। सबको महर्षि ने पाला, पोसा, बड़ा किया इस आशा और विश्वास से कि मंत्रायनी यहाँ की धरती इन्हें कामायनी का स्वभाव और संस्कार देगी। ये भूखे थे, निर्बल थे, दीन-हीन और दया के पात्र थे। जीवन की जर्जरता ने इन्हें याचक ब्राह्मण बना दिया था। देश के इस सबसे बड़े याचक महर्षि ने दया का अनाथालय भी यहां खोल दिया। कहना न होगा कि अपनी कुटिया के निकट ही गिनों के लिए उसने करुणा-निवास खोल दिया था। वह बड़ा प्रसन्न होता था जब यह देखता था कि परस्पर विरोधी स्वभाव के हिंसक जीव जन्तु जो आज अपनी प्रकृति तज आश्रम की मर्यादा निबाह रहे हैं तो वह अपने नये प्रयोग पर फूला न समाता था।

मुक्ति का महापर्व विश्वास, आस्था, चेतना और उत्तरदायित्व की अग्नि-परीक्षा का संदेश लेकर आया। मंदिर का जन जन ही नहीं तरु-

तृण भी युग-युग से वांछित कामना की तृप्ति के लिए, जीवन के सबसे बड़े ऋण को चुकाने के लिए आहुति ले आगे बढ़ा। प्रकाश की अग्नि से दिशा-दिशा में, धरती के चप्पे-चप्पे पर अहिंसक मुक्ति का अभूत-पूर्व युद्ध मंदिर के कोमल किसलय किशोरों ने छेड़ दिया। महर्षि की साधना थिरक उठी; जीवन का साध्य पूरा हुआ, अनुष्ठान की समाप्ति निकट आयी देख उनकी मनोकामना प्रसन्नता से विह्वल हो नाच उठी।

उसी समय महाठगनी माया ममता की चुनरी ओढ़ सदासुहागिन सी उनके सम्मुख नाचने लगी। उसकी अन्तरात्मा उस समय दृढ़ और बलवती थी। पर वय से झुकी कमर पर स्वार्थ की मंथरा द्वारा डाला गया डोरा दशरथ-मोह की भाँति उन्हें कर्तव्य के पथ से फिसलाने लगा। बड़े सधे पांव थे उस महर्षि के। अपने मल मूत्र से निर्मित मिट्टी के लोने के लिए उत्पन्न विधाता—मोह में वेद पुराण का वह ज्ञाता चेतना शून्य नहीं हुआ।

उसका दायित्व अकेला नहीं था। जग-ऋण से वह उऋण हो चुका था, लोक-ऋण उस पर था नहीं पर ज्ञान के जिस वैभव की पाठशाला का उसने श्री वर्धन किया था उसमें लगी प्रत्येक ईंट भी तो उसकी नहीं थी; उसने अपने लिए नहीं लोक से लोगों के लिए मांगा था। उसने सोचा इसे पुश्तैनी गद्दी बनाना कोटि-कोटि नर नारायण के साथ विश्वास-घात करना होगा। पर माया का नृत्य…।

उलझन में जो सुलझे मनीषियों की राय का सत्कार करते हैं माया और मोह ऐसों का कभी कुछ नहीं बिगाड़ पायी है और इस महर्षि का साथी तो ज्ञान का सिद्ध देवता ही था। उसने उससे सलाह मांगी क्योंकि अपनी उसकी राय उलझन की गुत्थी बन चुकी थी। उस शक्ति-द्रष्टा

ने सदा ही इस मंदिर को लोकाराधना की पूर्ण साधना स्थली माना भी जो था।

जब जब इस देश में ऋषि-गद्दियों की स्थापना जायमानों के लिए हुई है तब तब देश में रक्तपात, शोषण, अवर्षण और प्रलय की घटाएँ छाई हैं। ज्ञानी का पुत्र आत्मज नहीं शिष्य होता है, सूरमा का पुत्र रणाङ्कुश होता है और साधक का पुत्र सुजान होता है। इसीलिए इस देश में राम को लवकुश, शंकुतला को भरत जैसे या तो पुत्र उत्पन्न करने पड़े या वाल्मीकि, कालिदास और तुलसी के पूत नहीं उनकी कृतियाँ यहाँ पूजित हुईं।

सत्य-द्रष्टा युगविधायक एवं मंत्रद्रष्टा इस महाऋषि ने ध्यानावस्थित हो महर्षि के मायाजन्य मोहाग्रह के पात्र और वर्ण के कृतित्व पर ध्यान दिया। उसे वह बचपन से जानता था। वह इस महर्षि का अपने पिता से भी बड़ा भक्त लोक-मंच पर प्रमाणित हुआ था। जो सुत पिता का द्रोही हो सकता है वह उसके कृतित्व का भी विद्रोही होगा; यह तो सहज मनोवैज्ञानिक सत्य है। ऐसा भी कथन प्रचलित है कि इसके कारण गुरुकुल की मर्यादा एक बार ठिठक चुकी थी।

ऐसी स्थिति में निर्णय था; एक मित्र का एक मित्र के लिए कि नहीं, मोह, माया, ममता, साधना के लिए सबसे बड़े बाधक तथ्य हैं। इसलिए दूसरे कुल-गोत्र का पवित्र पर श्याम ऋषि भी अपने से अधिक वरेण्य है।

महर्षि का नारद-मोह भंग हुआ। मित्र ने मित्रता निभायी। महर्षि की प्रसन्नता देख कहा जाता है कि उस दिन आश्रम में जितने पुष्प खिले; उतने पहले कभी नहीं।

स्वार्थ और सिद्धि

महर्षि ने आश्रम के लिए अपने जीवन काल में ही अपना उत्तराधिकारी मात्र नहीं चुन रखा था अपितु उसका तिलक भी कर दिया था। वे बड़े प्रसन्न थे अपने इस कार्य से।

आश्रम की मर्यादा की सुरक्षा का विश्वास पा, देश के क्षितिज पर रागारुण उषा की लाली देख वह महर्षि सदा के लिए मंदिर में पूजा-पाठ की साधना और सिद्धि की पूर्ण व्यवस्था कर ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी की मूर्त्ति में समा गया। घड़ी, घंट, घड़ियाल इस शारद-पुत्र की कीर्ति गाथा जब तक धरती पर ज्ञानोपासना रहेगी, गाते जायेंगे। ब्राह्मण की शक्ति, भक्ति, तपस्या, साधना और सिद्धि का इससे विशाल मंदिर इस धरती पर न तो आज तक बना था और भविष्य की कुंडली देखने वाले ज्योतिर्विदों का ऐसा कहना है कि न भविष्य में ही बन पायेगा।

एक सौ पूत, सवा सौ नाती

***

महात्मा तुलसी दास ने यद्यपि राम कथा का सविस्तार वर्णन किया है तो भी अनेक स्थल लोगों को खटकते हैं। कविवर रविन्द्रनाथ ठाकुर के मन पर उर्मिला का विरह वर्णन पूर्ण न होने से चोट लगा। इसी प्रकार एक प्रसंग की ओर अप्रकाशित 'भविष्य पुराण' ध्यान आकृष्ट करता है। यद्यपि रामायण में इस कथा का स्थान आनुसंगिक ही होता तो भी इससे अनेक ऐसी बातों पर प्रकाश पड़ता जो जनता का ज्ञान बढ़ाने में सहायक होतीं। 'भविष्य-पुराण' मनन ऋषि कृत से संक्षेप में उस कथा का सार यहाँ दिया जा रहा है। इसे प्रकाश में लाने का श्रेय मुझे है इसलिए कापीराइट ई० सन् १६५८ के अनुसार सत्वाधिकार इसपर मेरे हैं।

रावण की मृत्यु के उपरान्त मन्दोदरी रणभूमि में विलाप करती हुई अपने पति का सिर अपनी जांघ पर सावित्री की भांति लेकर प्रभु राम से बिलपते हुए अपने सतीत्व के कारण संघर्ष करने लगी। मन्दोदरी को क्षणभर के लिए भी वैधव्य योग नहीं था। इसलिए उसने अपने पातिव्रत धर्म को साक्षी देते हुए राम से कहा---मैं अभागिन हो ही नहीं सकती; मां पार्वती ने मुझे अखण्ड सुहाग का वर दिया है। यद्यपि रण में आपने मेरे पति को मारा पर यह हो ही नहीं सकता कि वह मरें या मुक्त हों जबतक मेरी मृत्यु नहीं होती; मेरे पति का मरण आप पर कलंक है।......

'आप जैसा मर्यादा पुरुषोत्तम अखण्ड भाग्यवती को धोखा देगा यदि सती सीता यह जान जायेंगी तो सहज सौभाग्यवती होने के कारण उनका उन्नत मस्तक आपके इस कुकृत्य के कारण नीचा हो जायेगा।

प्रभु मुस्काकर बोले—जब-जब संसार में मन, प्राण और इन्द्रियों के धारण करनेवाली प्रकृतिसिद्ध सहज क्रियाओं का लोप होने लगता है तब-तब राक्षसत्व, अधमत्व एवं अभिमान का वेग धरती को ढकने लगता है। ऐसी स्थिति में तम के अन्धकार को दूर करने के लिए यथोचित मर्यादामंडित जीवन की प्रतिष्ठा लोक में अवतरित होती है, सूर्य की भांति। देवी, धरती पर से रज, तम और सत गुण का नाश कभी नहीं होता इसलिए उनके धारणकर्ता जीवों का भी समूल नाश कभी नहीं हो सकता।

मन्दोदरी ने सहज जिज्ञासा से सिर धुनते हुए कहा--चिन्ताकातर हूँ, ऐसी स्थिति में रहस्यमय बातें न कर सीधे सत्य प्रकट करें। दयासागर राम बोले—देवि, इतनी अधीर न हो? सुनें, आप अभी तब तक विधवा नहीं हो सकतीं जब तक आपका प्राण आप के शरीर में है क्योंकि आप सती हैं।

मंदोदरी—तो मेरी आँखें मुझे धोखा दे रही हैं, क्या?

श्रीराम—कुछ ऐसा ही है। कभी-कभी जीव इस धरती पर रहते हुए दूसरे लोकमें चेतना-संचरण करता है। इस समय आपके पति की भी यही स्थिति है। जिस सिर को आपने अपने जंघे पर रखा है उसके ब्रह्माण्ड में इस समय आपके पति की आत्मा अब भी है। इसलिए आपके विधवा होने का प्रश्न नहीं उठता।

मंदोदरी—कृपालु, मैं अपने पति को सचेत देखना चाहती हूँ।

श्रीराम—तो अपने सतीत्व की दिव्य दृष्टि से यम-लोक अपनी चेतना ले चलो।

[लोगों को ऐसा लगा की मंदोदरी के प्राण पखेरू उड़ गए।]

× × ×

[यम के दरबार में मृग-चर्म पर एक उदात्त ब्राह्मण त्रिपुण्ड लगाए बैठा है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश अन्तरिक्ष में जमे वातायन से उसे और सहमे हुए यम को चित्रगुप्त के साथ बैठा हुआ देख रहे हैं। चित्रगुप्त बही का पृष्ठ खोले हुए है। वह पृष्ठ स्वर्णाक्षरों से लिखा हुआ है।]

यमराज---राजर्षि; आप अवतारी मर्यादा पुरुषोत्तम राम के कर कमलों द्वारा जीवन-मुक्त हुए हैं, अतएव आप के यहाँ आने का प्रयोजन ही नहीं उठता।

रावण---ब्राह्मण निष्प्रयोजन न तो कहीं आता है और न कहीं जाता है ?

यमराज---फिर कारण बताएँ ? देखा जाय...।

रावण---मेरे निमित्त मेरे कुल गोत के ऐसे लोगों का विनाश हुआ है जिनका अपराध स्वामी धर्म का पालन है ? तप के दाय के प्रतिफल स्वरूप उनके मंगल-क्षेम की कामना मुझे यहाँ ले आयी है।

यमराज--तो ?

रावण--जीवन में मैंने सदा पाप ही नहीं किया है ?

यमराज---आपने तप भी किया है, उसका वरदान तो आप पा चुके हैं ?

रावण---पूरा नहीं; आंशिक मात्र।

(चित्रगुप्त खड़बड़ाकर पन्ने उलटते हैं)

यमराज---कुछ विवरण।

रावण---पूर्वजों के पुण्य का अंश मुझे नहीं मिला। पुत्र प्रपौत्रों के चरित्र के पुण्य फल का मेरा अंश अभी तक नहीं चुकाया गया। मेरी आदि तपस्या पर वरदान तो केवल भगवान शङ्कर ने दिया था और कुल देवों द्वारा मिलनेवाला अंश मुझे नहीं ही मिला।

यमराज---आपका पुनर्जन्म असंभव है ?

रावण—मुक्ति जिसकी जीवन-संगिनी हो गयी हो; उसको पुनर्जन्म से क्या नाता ?

यमराज—फिर ?

रावण—अपने पुत्र और प्रपौत्रों के ऋण से दबकर मुक्ति नहीं चाहता। सती मन्दोदरी को वैधव्य की स्थिति में छोड़ अर्द्धांगिनी ऋण के भार से दबना भी नहीं चाहता।

यमराज—तो ?

रावण—मंदोदरी सहित मुझे मुक्ति चाहिये। मेरे वंश का नाश नहीं होना चाहिये ? मेरे पुत्र और प्रपौत्र पुनः ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हो अमृत-ज्ञान साधना करें ?

यमराज—प्रथम मांग की पूर्ति तो श्री राम ने ही कर दी। उसका आधार मंदोदरी का सतीत्व है पर अन्य.... ?

रावण—तो मुझे मुक्ति नहीं चाहिए ? (स्थान पर से उछल कर)

यमराज—ब्राह्मण; शान्त ... सोचने तो दो ?

(उसी समय अंतरिक्ष में डमरु की ध्वनि होती है। चित्रगुप्त चौंक कर पुनः बही पढ़ने लगता है। पढ़ते पढ़ते उसका ध्यान अटक जाता है और बही वह यमराज की ओर बढ़ा देता है। यमराज उसे पढ़ते हैं।)

यमराज—संभव है, प्रतिबन्ध के साथ ?

रावण—कैसा प्रतिबन्ध ?

यमराज—कर्मगत।

रावण—व्याख्या करें।

यमराज—कलयुग में जितने तुम्हारे मुख हैं, उतने सुत ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होंगे ? तुम्हारे शीश एक-एक कर कट कट कर गिरे हैं अतएव एक कुल में न होकर वे अनेक कुल से होंगे और विविध

विषय ज्ञाता होंगे ? पर वे एक दूसरे से सम्बन्धित होंगे। उनके कर्म में सहोदरी शक्ति होगी।

रावण—कलयुग में कब ?

यमराज—जब आर्य पाश के घोर अभिशाप से अभिशप्त होकर आवतारिक मनुष्यों की सहायता से मुक्ति यज्ञ कर रहे होंगे। तम भी उस प्रगाढ़ बेला में...?

रावण—कहाँ...?

यमराज—मुक्ति-ज्ञान अबहानिकर भूमि पर प्रवेश करते ही उनकी जीवन लीला अग्नि की लपटों से झुलसने लगेगी। अतएव तामस प्रदेश में उनका जन्म होगा।

रावण—पर मेरा परिवार तो शिव भक्त है ?

यम—इसलिए यह भी विधान होगा कि शंकर-त्रिशूलधारी भूमि से विलग ही समीपस्त किसी भूमि पर आपके कुलका चक्र प्रवर्त्तन हो। संभव है धर्म्म चर्म्म के विलोम में दक्षिण दिशा में ज्ञान की शक्ति प्राप्त हो और सहज राक्षसी प्रवृत्ति के द्वारा आपका कुल उसी तपोभूमि को नष्ट करने का प्रयत्न आरंभ करे ?

रावण—सफलता मिलेगी ?

यमराज—तम का राज्य आर्यावर्त्त से विखंडित होते ही तमाश्रित इन जीवो के तमोगुण प्रधान लीलाओं को पर जम जायेंगे। ये महर्षियों, साधकों, तपस्वियों को निरादृत कर स्वयं तपभूमि के भाग्यविधाता बनने के राजस स्वभाव के पापवश शाप-ताप से पीड़ित हो अपने पराभव के पतित दिवस देखते-देखते चिल्लायेंगे और कोढ़ सदृश हीन समझे जाने लगेंगे ?

रावण—तो क्या पुलस्त्य वंश के लोग बिना युद्ध के ही शाप-ग्रस्त होंगे ?

यम—तम और रजधर्मावलंबी बिना स्वार्थ-युद्ध के जीवित ही नहीं रह सकते। मुक्तोदय तक अर्जित समस्त श्री और ज्ञान शक्ति को तम का कवच पहना वे अपने साथ लड़ायेंगे। चतुरंगिणी नहीं चतुर उनके साथ होंगे। पर...!

रावण—पर क्या ?

यम—यद्यपि वे सभी प्रकार की शक्तियों को एकत्र करने का प्रयत्न करेंगे तो भी जिस मंदिर की गद्दी अपने वशीभूत करने का वे प्रयत्न करेंगे उस मंदिर की वृत्ति से ही उनके ज्ञान और जीवन का प्रतिपालन हुए रहने के कारण मुक्ति के प्रकाश में उलूकतंत्र को वे शव-साधन समझ अभिशाप को वरदान मान चलेंगे तथा इस मंदिर से स्वार्थानुमुचित धन, लोक-धन होने के कारण अन्यत्र स्वार्थ में न लगा पायेंगे ?

रावण—तो क्या वे सफल न होंगे ?

यम—इसका लेखा तो विधाता ही बनायेंगे।

रावण (जल्दी से)—मेरे प्रपौत्रों का क्या होगा ?

यम—वे भी तुम्हारे उन दस पूतों के साथ आ मिलेंगे।

रावण—उनका क्या होग ?

कोई उत्तर न मिला। दाह कर्म के लिए भेजे गये लक्ष्मण ने देखा। मंदोदरी की चेतना कुंठित है; उसकी जाँघ पर पड़ा रावण का सिर हिला। फिर दोनों धूल में मिल एक साथ जीवन-मुक्त हो गए।

स्वार्थ और सिद्धि

लक्ष्मण मंदोदरी के सतीत्व से प्रभावित हो जानकी के दर्शन के लिए विह्वल हो उठे पर अग्रज का आदेश था--रावण महान का संस्कार विधिवत किया जाय।

× × × ×

यह पुराण उजबेकिस्तान के एक संग्रहालय में मिला था। भारतीय प्राचीन इतिहासविद इसकी प्रतिलिपि कराने की चिंता में हैं पर वहा के संग्रहाध्यक्ष ने ज्ञान दान में विश्वास कर लिया है, उसे बेचने में नहीं। इसलिए इस समस्या के समाधान के लिए एक उच्च-स्तरीय विद्वत-परिषद सायोजित की गयी है। उसकी बैठक शीघ्र ही होने वाली है।

यह सूचना उनके लिए है जो रूप से अधिक अन्तर पर ध्यान रखते हैं।



सोच मनहिं मन रहिए

❋❋❋

..........,

अल्हड़ यौवन को काम के स्वर से आपने छेड़ कर न केवल मेरे जीवन की रागिनी पर बसंत का स्वर-राग लेप लिया था अपितु मैंने सोचा था पूर्व जन्म के पुण्य-लाभ का स्वर्ण-योग आप जैसे विद्वान के सानिध्य से मेरी मिट्टी की काया को पारस बना देगा।

आप लन्दन के काम-कुंज की परियों का वर्णन करते समय पेरिस के माडल तक की वार्ता के बीच जिस समय यह कहते थे कि सुन्दर तो बहुत देखे पर मन-तन और हृदय जिस सौन्दर्य पर बेबस लट्टू हो गया वह तुम हो। जैसे चाहे तैसे नचाओ, मैं जीवन भर नाचूँगा। था,...थे...थैया।

शायद आप भूले न हों जब पहली बार आपने द्वार बन्द कर मुझे बरबस रोक लिया था; मैंने कहा था न, गुरु और शिष्या का यह संबंध? क्षमा करें! उस समय आप मेरे गालों को थपथपाते हुए बोले थे—तुम्हारे बिना अब जी नहीं सकता। गुरु के पहले मैं आदमी हूँ। पहली बार मेरे मन में प्रेम की चेतना ने अंगड़ाई ली है, इसे मत ठुकराओ। नाम से नहीं मन से मित्रता होती है?

मैं उस समय सिमट गई थी। जहर खाने की बात भी आपने की थी यदि मैं भूलती नहीं हूँ। उसके बाद कक्षा में यद्यपि आपने कभी मेरी ओर आँख नहीं उठाया तो भी जब लोक-लाज से मैं वहाँ दबी रहने लगी तो रोज आप घर पर किन शब्दों में मुझे बनाते रहे; इतनी जल्दी भूल गए क्या?

इतना ही नहीं,याद कीजिए जब आप मेरे कहने पर एकांत में नाचने लगे थे सचमुच मैं उस समय कितनी इतरा कर चलती थी। सोचती थी इन्द्र का राज्य मुझे मिल गया है।

वह दिन याद है जब आपने मुझे नयी अंगूठी जबरदस्ती पहनायी थी। मैंने पूछा भी था कि इसपर मेरा ही नाम क्यों अंकित है; तो आपने कहा था कि अब मेरा नाम कहाँ रहा, जर्रे-जर्रे में, जमीं और आसमाँ में जहाँ कहीं भी देखता हूँ; केवल तुमही तुम तो नजर आती हो।

मैंने यह भी आपसे पूछा था कि आपके घर पर पत्नी है; बेचारी दुःखी होगी तो आपने मेरी ठुड्डी पकड़ते हुए कहा था; सचमुच तुम बड़ी भोली हो, भारत की परम्परा रही है न; दुष्यन्त की तुम शकुन्तला जो हो। अरे...!! घर पर खाना पकानेवाली भी तो चाहिए, बाल बच्चे खिलाने-वाली भी तो चाहिए।

जब मैंने आपसे पूछा था कि कहीं वही मेरी गति न हो कि जीवन गोबर पाथते बीत जाय तो आपने कहा था कि तुम मेरी हृदयेश्वरी ही नहीं प्राणेश्वरी भी हो।

हाँ, हँसते हुए जिस समय आपने मेरी दो कापियों पर ९६ और ९५ अंक बैठा दिए थे उस समय मैं कितनी प्रसन्न हुई थी। प्रत्येक अंक के लिए मेरे अंग के रोम-रोम आपके प्यार से पुलकित हुए थे जैसे किसी बौने ने आकाश छू लिया हो...और भी तो; आपने मुझे अपने हाथ से नयी साड़ी जबरन पहनाते हुए कहा था कि अब गर्मियों की छुट्टी में कश्मीर चलेंगे; वहीं चलकर झील में जीवन की बहार लूटेंगे और सिविल मैरेज करके तब लौटेंगे।

सचमुच नारी कितनी भोली होती है कि बात की बात में जब किसी पर विश्वास कर लेती है तो तब तक विश्वास करती ही जाती है जब तक

उसे ऐसी ठोकर नहीं लग जाती जिसके कारण उसकी लाज बिना मोल के खुले आम सड़क पर बिकने लगती है और लोग उस पर हंसते हैं; घृणा करते हैं, सहानुभूति की होली जलाते हैं। वे भी उठाने से इनकार ही नहीं करते दर्शकों से भी अधिक घृणा करते हैं जिनके कारण जीवन भर के लिए नारी के मस्तक पर सिंदूर के स्थान पर कलंक का टीका लग जाता है।

अन्ततोगत्वा आप भी एक ऐसे ही पतित, पामर एवं ढोंगी निकले। गुरु होकर आपने अपनी पुत्री तुल्य शिष्या को स्वार्थ और मद का नशा पान करा उसकी स्थिति एक वेश्या से भी अधिक खराब कर दी और यह कृत्य ऐसे स्थान पर आपने किया जो वीणापाणि का मंदिर मात्र ही नहीं है एक महर्षि का पावन आश्रम भी है; यहाँ से तुम्हारी रोजी रोटी चलती है। अतः अन्नपूर्णा का भी तुमने तिरस्कार किया है।

इतना ही नहीं मां बनने वाली एक स्त्री को धोखा दे तुमने यह भी सिद्ध कर दिया है कि तुमने अपनी मां का दूध तक नहीं पिया है। यद्यपि मैं घर द्वार से गयी। लोक और परलोक से गयी पर तुमने अभीतक मेरा प्यार देखा था, घृणा नहीं देखी है। सोचने और समझने का अवसर तुमको अब नहीं देना चाहती हूं। तुमने मेरा जीवन नष्ट कर दिया होता तो कोई बात नहीं थी। [illegible] तुम और किसी भी बहन का जीवन नष्ट न करो, इसलिए तुम्हें अलग कर [illegible]।

आश्रम [illegible] नहीं रहूंगा। तुम्हारे साथ [illegible] नहीं मिलती। मैंने इसके लिए निम्नलिखित पत्र [illegible] किया है। देखूं, अब [illegible]!

स्वार्थ और सिद्धि

....

सेवा में
कुलपति महोदय,
महर्षि मंदिर
ज्ञान धाम।

भवदीय
......
... ..

मान्यवर,

मैं स्नातकोत्तर परीक्षा में इस वर्ष प्रथम श्रेणी में प्रथम उत्तीर्ण हुई हूँ। यह पद अपने कुल और इस गुरुकुल की मर्यादा भंग करके मैंने प्राप्त किया है। यद्यपि मैंने इस पद की प्राप्ति के लिए अपना सतीत्व इस धोखे से भंग कर दिया कि आचार्य पिपासु दास की मैं पत्नी भी हो जाऊँगी और महान विदुषी भी। अब मैं उनकी कृपा से मां होने वाली हूँ। अब वे मुझे पहचानते भी नहीं, वेश्या भी कहते हैं।

उनकी पाण्डुलिपियाँ आप पहचानते होंगे। संलग्न पत्र उनके और मेरे प्रणय-व्यापार के स्मारक हैं जो संभवतः मेरी ओर से गुरुकुल को अंतिम प्रणाम हैं। इस आशा और विश्वास से कि भविष्य में किसी का जीवन यदि यहां सुधरे नहीं तो पितृ-तुल्य लोगों द्वारा भ्रष्ट भी न किया जाय। यदि और प्रमाण चाहें तो जरूरत पड़ने पर मुझे.. ... पते से बुला लिया जाय। हाँ दो बातें और......

एक तो मेरी वे कापियाँ दिखा ली जांय जिनके जाँच कर्त्ता पापी पिपासु दास रहे हैं। एक कापी में तो दो ही प्रश्न पर ९५ अंक मिल गए हैं!

दूसरी बात यह कि महर्षि को यह न मालूम हो; नहीं तो उनकी अंतरात्मा कराह उठेगी। उन्हें मेरे कारण कष्ट नहीं मिलना चाहिए। पर पापी छूटना भी नहीं ही चाहिए।

आप के गुरुकुल की एक कलंकिनी
....
....

संलग्न, इक्कीस प्रणय पत्र

जिस समय यह पत्र पितासु को मिला। वे बौराए कुत्ते हो गए। जो जहाँ मिलता, काटने के लिये दौड़ाते। ऐसी स्थिति में भी उनकी तिकड़मी बुद्धि नहीं मानी।

वे दौड़े-दौड़े पीठस्थविर के पास गए। कहा कि इस वर्ष की उत्तर पुस्तकों में से एक पर एक के लड़के ने अंक दे दिया मैंने और जँची उत्तर पुस्तकों में मिला दिया। मैं जँची कापियों पर एक साथ हस्ताक्षर करता हूँ। अभी-अभी यह बात ज्ञात हुई है; इसलिए चला आया हूँ। अब साधों का जमाना नहीं रहा।

मुँह बनाते हुए पीठस्थविर ने कहा, सच है, नीम निचाई पर लहै और भी।

तीन छिपाए ना छिपे हत्या, चोरी, पाप।

खेद है वे कापियाँ अब कुलपति–आवास पर पहुँच चुकी होंगी।

"क्यों?"

"कुलपति का आदेश।"

"पर गलत काम है।"

"कुलपति के आदेश से लिखा हुआ पत्र पत्र-प्रेषण पुस्तिका पर चढ़ गया है उसे ले लें। शायद कुलपति ने आपको तत्काल बुलाया है आप वहीं यह बात भी कह दीजिएगा कि यह गलत काम है।"—मुस्करा कर उन्होंने कहा।

पि. दा. के पैरों से धरती खिसकने लगी। यद्यपि उनकी आखें उस समय दर्प पाकर डूबने वालों की तरह लाल हो गयी थीं, चेहरे पर चमकने वाली दीप्ति कुछ कुछ ऐसी हो गयी थी जैसे किसी ने तारकोल पोत

दिया हो। तो भी उनका बदन नत नहीं हुआ जैसे इतनी ही पाप की मदिरा ली हो जो सभ्यों में छिपायी जा सकती है।

"यह मामूली बात है। जाता हूँ कुलपति के यहाँ। यदि ऐसे छोटे मोटे धोखों पर भी मेरे जैसे रैंक के लोग तत्काल बुलाये जाने लगेंगे तो महर्षि-मंदिर से अनुशासन विलुप्त हो जायेगा।"—कहते हुए उन्होंने पत्र-प्रेषण पुस्तिका पर हस्ताक्षर बना; लिफाफा फाड़ा।

"हो सकता है; इसी विषय पर मंत्रणा के निमित्त कुलपति को आप की स्मृति सता रही हो।"—मुस्कुरा कर पीठस्थविर ने कहा।

"यह हँसी की बात नहीं है। कल आप पर भी यही हो सकता है।"

"तो मैं भी बुला लिया जाऊँगा, कोई बड़ी बात तो है नहीं, कार्यालय के कार्य से रोज जाता हूँ, अपने कार्य से भी चला जाऊँगा।"

"ठीक है।"—क्रोध में कहते हुए आचार्य पि. दा. फिरंगी की चाल से उड़े और दुलुकिया कुलपति के आश्रम पर पहुँचे।

अत्यन्त विचारमग्न मुद्रा में एकांत कुलपति गीता पढ़ रहे थे। पहले से ही आदेश था पि. दा. को आते ही कक्ष में भेज दिया जाय; वे और किसी से आज नहीं मिलेंगे। आज उनका मन उदास था जैसे उन्होंने किसी बहुत बड़े षड़यंत्र में योग दिया हो।

पि. दा. के कक्ष में प्रविष्ट होते ही वे शून्य की भांति प्रशांत हो गए।

"आप क्यों बुलाए गए हैं; यह आप को ज्ञात है। कापियां मैंने देख ली हैं, पत्र की प्रतिलिपि आप भी देख चुके हैं। यदि आप कोई सफाई देना चाहते हैं तो जाँच-समिति गठित कर दूँ। अन्यथा यदि आप चाहते हैं कि कुल की मर्यादा सुरक्षित रहे, आप का यह यश विस्तार न पाए तो कृपा कर त्याग पत्र दे २४ घंटे के भीतर गुरुकुल खाली कर दें। दोनों में जो भी आपको पसंद हो, तत्काल उत्तर दें।"

"मैं जाना चाहूँगा। अपमान; घोर अपमान सह कर...।"

बीच में ही "कागज और कलम सामने रखा है, सोच लें। अपमान करने के अपराध का ही यह दंड है। इस संबंध में मैं कुछ भी नहीं सुनना चाहता।"

त्यागपत्र देकर बाहर आने पर पि. दा. का शरीर झनझना उठा, उसी प्रकार जैसे बिजली का करेंट छूने पर। श्रीमन अपने घर भी नहीं पहुँचे कि कुछ सहयोगी वहाँ पहुँच चुके थे। वे भी उसी धर्म, जाति और सम्प्रदाय के थे।

"महर्षि के यहाँ कुलपति के इस आचरण की अपील की जायेगी। उनके बाप का यह गुरुकुल नहीं है। कोई वेश्या किसी पर कोई आरोप लगा दे और उस वेश्या से कुछ न कहा जाय और इतने बड़े आचार्य से रिवाल्वर के बल पर त्याग पत्र लिखा लिया जाय।'—एक ने कहा।

"हाँ, हाँ, कुलपति की खेल है। उसकी ही चाल है। वह हम लोगों से जलता जो है। महर्षि की अक्ल में पत्थर पड़ गया है। ऐसे दुरभि सन्धि वाले पापी को इस महान पवित्र भूमि पर पता नहीं क्यों बैठा लिया। जादू कर दिया है जादू।"—दूसरे ने कहा।

"हत्यारा कहीं का, कमीना।"—तीसरे ने कहा।

पि. दा. के मुँह से एक भी बात न निकली, कुछ उसी प्रकार जैसे महाराजाधिराज विजयी की नोटिस मिलने पर जनाना मंडल के मुख पत्र के प्रमुख प्रबंधक के मुँख से।

तुलसी दास ने लिखा है न,

जे न मित्र दुख होहिं दुखारी;
तिन्हीं बिलोकत पातक भारी।

इसका भी वाचन पापी मुखों से हुआ और निश्चय हुआ कि महर्षि से निवेदन कर कुलपति को हटवाया जाय।

आचार्य पि० दा० में तो यह साहस न था कि वे अपना कृष्णमुख महर्षि को दिखाएँ पर उनका दल-बल मुँह से बाजा बजाता हुआ महर्षि-आश्रम तक पहुँचा।

जिस आश्रम में कभी किसी को किसी समय जाने के लिए रोक नहीं लगी; वहीं आज यह दल रोक दिया गया। रोकनेवाले ने एक पत्र दिया और कहा महर्षि तीन दिन किसी से नहीं मिलेंगे। पत्र खुला था:

प्रिय······,

आशीर्वाद।

श्री पितामुदास गुरुकुल की सेवा से मुक्त होकर आ रहे हैं। अपनी योग्यताएँ ये स्वयं बता देंगे। कृपाकर इन्हें कोई उचित नौकरी दे दें। यहाँ ६ सौ मासिक पर ये काम करते रहे हैं। इतने से कम पर इनका गुजर न होगा।

शुभ हो।

भवदीय

महर्षि

पितामु को जब यह पत्र मिला तो उन्हें जैसे काँटों के जंगल में पगडंडी मिल गयी हो।

दो दिन बाद समाचार पत्रों में अगल-बगल दो समाचार छपे पहला था काले मोटे टाइप में और दूसरा पतले में।

तरुणी की लाश

एक अज्ञात कुल गोत्र की तरुणी की लाश गंगा के किनारे पायी गयी है। कहा जाता है कि वह गर्भवती है। पुलिस मामले की सरगर्मी से जाँच कर रही है।

ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि कलंक से बचने के लिए की गयी यह आत्महत्या है। लाश पोस्टमार्टम के लिए भेज दी गयी है।

नव नियुक्ति

सुप्रसिद्ध विद्वान तथा महर्षि मंदिर के प्रख्यात आचार्य श्री पितासु दास की नयी नियुक्ति उद्योग नगर के एक प्रसिद्ध प्रतिष्ठान में सलाहकार के पद पर एक सहस्र मासिक वेतन पर हुई है।

अपने नये पद का कार्य भार लेने के लिए तीन दिन पहले ही महर्षि मंदिर से उन्होंने त्याग पत्र दे उद्योग नगरी की ओर प्रस्थान किया। स्टेशन पर विदाई देने के लिए अनेक प्रख्यात विद्वान तथा नागरिक उपस्थित थे।

इस नये कार्य को महर्षि का आशीर्वाद प्राप्त है।

महर्षि को रोज समाचार-पत्र पढ़कर सुनाये जाते थे। इन समाचारों को सुनने के पश्चात् उन्होंने कहा—बस अब आज और अधिक समाचार सुनने को जी नहीं चाहता। हो सके तो एक सप्ताह तक लगातार गरुड़-पुराण का पाठ कर सुनाओ और तेरह दिन तक रोज आश्रम पर एक ब्राह्मण खिलाया जाय मैं तब तक फलाहारी पर व्रत रहूँगा?

कोई नहीं जान पाया यह अयाचित अनुष्ठान क्यों?

स्वार्थ और सिद्धि

अजन्ता के चित्र सदियों से न केवल जन-रंजन के वज्र पट पर खिले अमर नयनाभिराम वसंत श्री रहे हैं अपितु एकांत कला की तपसिद्धि के महातीर्थ भी।

भारतीय धर्मों के इतिहास में जो स्थान धम्म चक्र प्रवर्त्तन का रहा है; भारतीय नरेशों के इतिहास में जो स्थान अशोक का रहा है, भारत के दर्शन में जो स्थान बुद्ध दर्शन का रहा है और मुगलों के कृतित्व में जो स्थान ताजमहल का रहा है वही स्थान विश्व के कला तीर्थों में अजन्ता का भी है। कला तीर्थ जन तीर्थ से सदा ऊपर रहा है। जनता के तीर्थों में तो पंडों और महन्तों का प्राधान्य हो जाता है पर कला तीर्थ के के चरणों पर प्रत्येक युग की चेतना श्रद्धा के सुमनों से अपनी डाल भर ब्रह्मानन्द की भक्ति-मलयज से अज्ञात शृंगार-पूजन करती रहती है। इसलिए ऐसे तीर्थ वहीं स्थापित हो पाते हैं जहां स्वार्थ का आगम दुरुह हो।

पहाड़ी की गोद में एकांत साधना लीन अज्ञात कलाशिल्पियों के चेतना की यह प्रकाश भूमि श्रद्धा की डोर से कला के अनन्त पुजारियों को कलाकार के व्यक्तित्व का बोध कराने के लिए जाड़ा, गर्मी, बरसात सभी ऋतुओं में बुलाती है। साधक, सिद्ध, सुजान एवं दर्शनार्थी तो यहाँ आते ही हैं; ज्ञानार्थी भी गुरुजन के साथ टोलियां बना इस सिद्ध भूमि का दर्शन कर नयनों के सुफल लाभ के लिए आते हैं।

लगभग एक युग व्यतीत हो गए, यहाँ छात्रों की एक टोली आयी थी; छात्राएँ भी उस गोल में थीं। उनके पथ दर्शक थे सभी कलाओं के मर्मस्पर्शी ज्ञाता आचार्य तिसमार।

पर्यटन शिक्षण का एक साधन है; आचार्य बेकन के लिखने के हजारों वर्ष पहले से यह ज्ञान लोगों को रहा है पर आचार्य तिसमार ने यह

प्रमाणित कर दिया था अपने सहज-स्वभाव-सिद्ध अनुभवजन्य ज्ञान के आधार पर कि वह अर्थ, धर्म और काम की तृप्ति का भी साधन है।

उन्हीं के महामंदिर में बटुकाचार्य नामक एक छोटे सिट्के आचार्य भी रहते थे जो आचार्य तिसमार को सदा काल-दृष्टि से देखते थे। कारण सहज मनोवैज्ञानिक था। यद्यपि दोनों का रास्ता प्रयोग द्वारा ज्ञानोपलब्धि का था तो भी तिसमार के द्वार पर उसके आकर्षण के कारण प्रयोग के उपादान चेतन की भाँति मेला लगाये रहते थे और बटुकाचार्य की उपासना करने पर भी वांछित प्रयोग सामग्री कला तथा रूप चातुरी के अभाव में न मिल पाती थी। दो समान पट्टियों के बीच भाग्य का वैचित्र्य जलन का चक्र सदा से चलाता आया है इसमें कभी भाग्यशाली जल जाता है और कभी अभागे के प्राण स्वयं मृगमद में फँस उसकी मृत्यु के कारण बनते हैं।

आचार्य तिसमार के नेतृत्व में कला तीर्थ का यह त्रिकोणात्मक अभियान बटुकाचार्य के कोप के बाद भी सहज सफल हुआ।

चित्रों का अर्थ समझने समझाने के उपरान्त, नयनों को रस धर्म से अभिसिक्त करने के लाभोपरान्त इन कला यात्रियों का डेरा निकटस्थ डाक-बंगले में रजनी काटने के लिए लग गया।

इस दल के शिक्षार्थी एक कक्ष में, कुछ शिक्षार्थिनियाँ दूसरे कक्ष में और आचार्य तीसरे कक्ष में दो शिष्याओं के साथ आसीन हुए।

कला के उन चित्रों में जिसे अभी कुछ समय पहले आचार्य ने देखा था कुछ अभाव का दर्शन हुआ। उन्होंने अपना प्रवचन आरम्भ किया और ऐसी मुद्राओं की बात बताने लगे कि उनमें से एक शिष्या नींद लोक की मुद्रा में नारी सुलभ लज्जा के कारण चली गयी। दूसरी रस चेत

थी। कुमार संभव के सप्तम सर्ग के आधार पर यदि कोई मुद्रा बनायी जाय तो अजन्ता की मुद्राएँ व्यर्थ हो जायेंगी। ऐसा बताते बताते उन्होंने प्रायोगिक रूप में वह मुद्रा उपस्थित कर दी।

इधर एकान्त में द्वार के बाहर प्लेश लिए शीशे की खिड़की से किसी ने उस मुद्रा का प्रतिरूप उतार लिया किसी दूसरे तीर्थ में दर्शन कराने के लिए।

आचार्य ने कहा—विद्युत माला इस नवोपलब्ध मुद्रा के अभिनन्दनार्थ द्वार को चूम कर आज धन्य हो गयी। श्रम सीकर में डूबी चेतना इस उपलब्धि की कल्पना में सो गयी। आँखें तो प्रातःकाल खुल गयीं किन्तु निन्द्राभंग महर्षि, मंदिर में आने पर हुआ।

महामान्य कुलपति महोदय;
महर्षि मंदिर
ज्ञान-धाम।

महा मान्यवर;

इस विद्यापीठ में सत्य, ब्रह्मचर्य के प्रतिपालन द्वारा ज्ञानार्जन की महिमा की यशोगाथा आपके श्री मुख से निरन्तर सुनती आयी हूँ।

पता नहीं कहाँ तक सत्य है, इसगुरुकुल के आचार्य लोगों की यह कथनी कि यहाँ पढ़नेवाले छात्र हमारे पुत्र और छात्राएँ पुत्रियाँ हैं। कम से कम मेरे अभिभावक ने भी यही सोच समझ कर मुझे एक हजार मील से भी अधिक दूरी से यहाँ ज्ञानार्थी के रूप में भेजा है।

यदि इस कुल की लड़कियों के साथ यहाँ का एक आचार्य भी पतिवत व्यवहार करना चाहता है और उसे वैसा करने दिया जाता है तो निश्चय ही इस कुल में एक दिन केवल पत्नियों की ही पाठशाला लगेगी।

जो कुछ भी हो; साथ में अजन्ता में गए छात्रों के एक दल के एक का आचार्य का कृतित्व सचित्र संलग्न है। मैं उस कमरे में ही थी। इससे अधिक लिख सकना एक भारतीय नारी के लिए संभव नहीं है। हाँ, यहाँ पर मेरे अभिभावक मेरे पिताजी के मित्र आचार्य बटुकाचार्य हैं। उनसे मैंने सारी बातें स्पष्ट बता दीं हैं। यदि आवश्यकता हो तो आप उनसे पूछ सकते हैं।

मैं जानती हूँ कि तथोक्त आचार्य महर्षि के सदा से कृपा पात्र रहे हैं; आज की उनकी भृत्ति भी महर्षि की दया का ही परिणाम है। इसीलिये उनका कुछ नहीं होने का।

पर इस आशा और विश्वास से कि सत्य के धारक आचरण में सत्य का प्रतिपालन किस सीमा तक करते हैं इसका प्रमाण मेरे ही पास नहीं, आवश्यकता पड़ने पर शिक्षा-जगत् के सम्मुख रहे आपसे निवेदन कर दिया है।

चुभती हुई बात और कष्ट के लिए क्षमा। इसीलिए भी कि जब तक इस विद्यापीठ में ऐसे लोग हैं कोई भी भारतीय युवती यहाँ स्वाध्याय करने में अपना अपमान समझेगी और संभवतः मैं भी एक भारतीय युवती होने में गौरव का अनुभव करती हूँ......।

कुलपति गनेश्वर ने जब यह पत्र पढ़ा तो वे काँप उठे। गुरुकुल की मर्यादा का दिनोत्तर काम-वासना से आक्रांत होना उनकी दृष्टि में ऐसा अपराध था जो क्षम्य नहीं हो सकता। पर इस संक्रामक रोग से गुरुकुल की रक्षा कैसे की जाय। यह भी एक समस्या उनके सामने थी।

गुरुकुल की पवित्रता आचार्यों की सुचिता की दुहिता होती है। दुहिता ही नहीं मूल शक्ति भी। जो शिक्षा चारित्रिक निर्माण नहीं कर सकती वह माया ही है। माया से मुक्ति के लिए नैतिकता वही कार्य करती

है जो होम संक्रामक कीटाणुओं से मुक्ति के लिए। जिस गुरुकुल में इन मान्यताओं का विस्खालन होता है वह शीघ्र ही धूल धूसरित हो पतित हो जाता है।—ऐसी मान्यताओं को ही जीवन भर कुलपति गीतेश्वर ने विद्यामंदिरों के संचालन का आधार बनाया।

और आज उनकी ही नाक के नीचे इन मान्यताओं को उसी प्रकार तोड़ा जा रहा है जैसे पालतू बिल्लियां पालतू कबूतरों को मरोड़ती हैं।

वे उद्विग्न हो उठे। उसी समय वे महर्षि के आश्रम पर जाने के लिए निकले; अकेले वहां तक गए भी। देखा; वहां उक्त सज्जन जिनसे संबद्ध पत्र कुलपति की जेब में था, महर्षि को यात्रा का उल्लासमूलक वर्णन चारण की वंदना शैली में सुना रहे हैं। महर्षि ने कुलपति की भृकुटि इतनी टेढ़ी कभी नहीं देखी थी। उक्त सज्जन को वहां देखकर वह और भी बाँकी हो गई, लपलपाती कटार की भाँति।

उन्होंने महर्षि को नमस्कार करते हुए कहा कि यों ही दर्शन करने चला आया था; जा रहा हूँ, फिर आऊँगा। लोगों के अभिवादन का उत्तर तक कुलपति ने नहीं दिया; एकाएक वे जाने लगे।

महर्षि समझ गए कि कोई संगीन मामला उपस्थित हो गया है। इसी बीच आचार्य तिसमार ने कहा—कुशल तो है।

जाते हुए कुपित कुलपति ने पीछे मुड़कर देखा और कहा कृपया अभी हमसे मिल लीजियेगा। वे चले गए। खतरा किधर से उत्पन्न हुआ है महर्षि यह अनुमान लगाने से नहीं चूके। वे जानते थे कि गीतेश्वर को मंदिर की उनसे भी अधिक चिन्ता है। कभी कभी तो वहाँ की मर्यादा के रक्षण के लिए वह महर्षि की दयावृत्ति को भी निरुत्तर कर देता था। महर्षि को उस पर इतना अगाध विश्वास था कि मंदिर के उन मसलों पर वे अपनी राय तक नहीं रखते थे जो कुलपति स्वयं देखते थे।

महर्षि कुलपति की इस स्थिति से व्याकुल हो उठे। तिसमार से कहा, 'तुम तत्काल जाकर कुलपति से मिल लो।

तिसमार की प्रतीक्षा में ही कुलपति बैठे थे। आते ही उन्होंने अजन्ता वाला चित्र उन्हें दिखाया और कहा कि आप के हित में यही उचित है कि तत्काल गुरुकुल से अपना कुण्ण मुक्त करें।

महर्षि के दुलार के कारण सहका श्री तिसमार का मन दुबक गया। वे अपनी सफाई उस सम्बन्ध में देना चाहते थे। पर कुलपति उस समय वज्र हो गए थे। उन्होंने कहा या तो अभी त्याग-पत्र लिखिए अथवा आपको मैं तत्काल निष्कासित करता हूँ। इसके अतिरिक्त और कुछ मैं सुनना नहीं चाहता।

काँपते हुए तिसमार ने कहा—मैं त्याग-पत्र दूँगा।

भृत्य को बुलाकर कागज और लेखनी कुलपति ने मगा ली और कहा मैं बोलता हूँ आप लिखें—

कुलपति
महर्षि मंदिर,
ज्ञान धाम।

महोदय,

किसी भी स्थिति और परिस्थिति में अब मैं इस गुरुकुल की सेवा नहीं करना चाहता। कृपया तत्काल मुझे कार्य-भार से मुक्त किया जाय।

भवदीय
तिसमार
आचार्य
महर्षि मंदिर

कुलपति ने इस त्याग-पत्र पर उसी कलम से वहीं लिखा: -

आज से स्वीकृत। इनसे तत्काल मंदिर का पावना लेकर जो कुछ भी इनका मंदिर पर हो वह दे दिया जाय।

गीतेश्वर

कुलपति

महर्षि मंदिर

तिसमार में यह साहस न था कि वे महर्षि तक आते। सीधे घर आए।

घर पर लोगों से कहा कि गुरुकुल में मेरे ज्ञान और शक्ति का शोषण होता था इसलिए मैंने वहाँ से त्याग-पत्र दे दिया है। जो वहाँ का मायावी कुलपति है उसने महर्षि पर ऐसा जादू किया है कि उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है। इतनी उसे छूट दे रखी है कि महर्षि के पुत्र तक को अपना सहायक उसने नहीं बनाया और महर्षि ने कुछ नहीं सुना।

यद्यपि महर्षि मंदिर के परस्पर वैमनस्य का कुपरिणाम तिसमार के निष्कासन का कारण हुआ तो भी जो पक्ष गुरुकुल को स्वस्वार्थ का निमित्त मात्र मानता रहा कुलपति को अपना सबसे बड़ा शत्रु ऐसी ही कार्यवाहियों के कारण घोषित करने लगा।

महर्षि ने आश्रम की संचालन व्यवस्था में सदा इस बात का ध्यान रखा कि उसके संचालन में सभी ऐसे लोगों का पूर्ण योग और सहयोग रहे जिनके कारण विद्या-मंदिर अस्तित्व में आया, पनपा, खड़ा हुआ और भविष्य में जिनसे इसकी सहायता की आशा हो सबके विश्वास पात्र प्रतिनिधि तथा वे अध्यापक भी जिनकी रोजी रोटी की वृद्धि गुरुकुल की श्री से ही शोभाशालिनी हो सकती है इसके संचालन मण्डल में रहे। इतना ही नहीं कुलपति भी यहाँ वही हो सकता था जिसमें ऐसे प्रतिनिधियों का पूर्ण विश्वास हो।

ऐसी व्यवस्था महर्षि ने यहाँ सकारण तो प्रतिष्ठित की ही थी। मंदिर का प्रधान कार्यसंचालन वही असीम शक्ति के साथ कर सकता है जो सभी सम्बद्ध लोगों का विश्वास पात्र हो। जहाँ प्रेम होता है वहाँ पर ही ऐसा विश्वासी भी होता है जिसमें सब की श्रद्धा हो और जिसे सब ऐसा समझते हों कि उसके कारण सबका भला होगा। ऐसे विश्वासपात्र के निर्देश पर न केवल सब अपने स्वार्थ को बृहद् स्वार्थ के लिए तिलांजलि देते हैं अपितु आवश्यकता पड़ने पर आहुति भी।

पर मनुष्य सामान्यतः स्वार्थी प्राणी होता है। यदि उसे यह रंच मात्र भी अधिकार प्राप्त हो जाता है कि जिसे प्रतिष्ठित करने का उसे अधिकार है यदि वह उसके निर्देश पर नहीं नाचेगा तो प्रतिहिंसा की भावना स्वभावगत सहज स्वार्थ के कारण अत्यन्त विकराल रूप धारण कर प्रकट होने लगती है। कुछ-कुछ ऐसा ही कुलक्षण यहाँ भी प्रकट होने लगा।

ऐसे लोग भी गुरुकुल की संचालन-समिति में थे जिन्हें महर्षि ने वृत्ति देकर पढ़ाया था; गुण के कारण नहीं; गरीबी के कारण। उनको इन्होंने पढ़ाया ही नहीं, सोचा जिस स्थिति में गुरुकुल ने इनकी सहायता की है; वह स्थिति संभवतः इन्हें जीवन भर न भूले; इसलिए ये भी इस गुरुकुल में प्रेमपूर्वक, दया और ममतापूर्वक छात्रों का प्रतिपालन पुत्रवत करने में अधिक समर्थ होंगे। इसलिए गुरुकुल में स्थान न रहने पर भी इन्हें नौकरी देते गए।

वे सच्चे अर्थों में ऋषि थे। पर दोष तो देखना वे जानते ही नहीं थे इसलिए तत्जनित दुष्परिणामों की उन्होंने कभी कल्पना भी नहीं की।

महर्षि ने एक दो नहीं लेहड़ों को इस प्रकार पाला-पोसा था। इनकी महर्षि तक पहुँच थी, उनके दरबार में वे उठते, बैठते, सोते,

जागते थे। फलतः गुरुकुल के सामान्य जन उनकी हाँ में हाँ मिलाते फिरते थे। उनके द्वारा किए गए उत्पातों तक को प्रकट करने का साहस उनमें नहीं था। महर्षि के इस नये उत्तराधिकारी के कारण न केवल उनके अवांछित स्वार्थ को धक्का लगने लगा अपितु कुकृत्यों पर गुरुकुल से विदा की नौबत भी आने लगी।

निज स्वार्थावलंबियों का समूह अत्यन्त गठित, अपने मंडल के लोगों के प्रति अत्यन्त ईमानदार ही नहीं, वफादार भी होता है, क्योंकि शृंखला में रंचक मात्र भी त्रुटि पड़ने पर स्वार्थ के गाड़ी की गति अनिश्चित काल के लिए अवरुद्ध हो जाती है। उदाहरण के लिए डाकुओं का परस्पर गठन और सौहार्द्र तथा जुआड़ी की ईमानदारी और नशीलची का साथी नशीलची के प्रति प्रेम 'साक्षी' के रूप में रखा जा सकता है।

यदि एक बार कुत्ते के मुँह मांस लग जाता है तो सदा के लिए हड्डियों को चिचोरने की आदत उसको पड़ जाती है; ठीक इसी प्रकार स्वार्थ पालित व्यक्तियों की भी स्थिति होती है। यह स्थिति तो सीनाजोरी का रूप ले लेती है जब व्यक्ति पालक के मुँह लगा होता है। ऐसी ही स्थिति इन अनेक पालित विद्यामंदिर के अध्यापक आचार्यों की की थी।

मर्यादा और नैतिकता की प्रतिष्ठा के लिए कुलपति द्वारा उठाये गए प्रत्येक कदम से जहाँ मंदिर की श्री वृद्धि हुई, वहीं अनेकों के अवांछित स्वार्थ को भी उतना ही आघात पहुँचा जितना आघात पेशकार को पैसा न मिलने पर हुआ करता है।

मंदिर के इस मण्डल के दो-दो आचार्य दूध की मक्खी की भांति निकालकर फेंक दिए गए। महर्षि-सुत और मण्डल-सञ्चालक को कुलपति

ने अपने सहायक के योग्य नहीं माना; फिर भी कुलपति के प्रति अगाध विश्वास महर्षि के संबंध में भी इस मण्डल के लिए खटकने वाली बातें थीं।

वे कुलपति को ही अपने इन मित्रों के निष्कासन का कारण मानते थे क्योंकि इसके पहले किए गए इनके ऐसे कार्य या तो कुलपति तक पहुँच ही नहीं पाये थे या कुलपति ने एकांत में समझा-बुझाकर समाप्त कर दिए थे।

इन्हें अपना दोष नहीं दिखता था, शायद इसलिए भी कि ये दोष कर ही नहीं सकते थे। इसलिए किसी भी कुकृत्य के लिए ये या इनका मण्डल उत्तरदायी नहीं रहा।

वर्त्तमान की ही बात होती तो ये टाल भी जाते। भविष्य का पूरा जीवन इनका बाकी था। इनके बाल-बच्चों का जीवन बाकी था। गोती पड़ोसी और रिश्तेदारों का जीवन भी बाकी था। यदि इनका प्रतिपालन यहाँ से हो रहा है तो स्वतः उन सबका भी यहीं से होना ही चाहिए।

मामूली नहीं; बहुत बड़ी बात थी। मण्डल में चेतना-जागृति का महामंत्र गुप्त गोष्ठियों में फूँका जाने लगा तथा पग-पग पर कुलपति के विरोध के आयोजनों को संचालित करने का यत्न आरम्भ किया जाने लगा।

पहले तो यह सोचा गया कि कुलपति और महर्षि को ही लड़ा दिया जाय पर विश्वास और श्रद्धा में युद्ध कराने की बात सदा से बचपन प्रमाणित होती आयी है। यह आयोजन बालू का महल प्रमाणित हुआ।

स्वार्थ जब चूक जाता है तो प्रतिहिंसा की आग और भी अधिक बलवती होकर स्वार्थी को जलाने लगती है और यहाँ स्वार्थी एक और दो नहीं एक मण्डल का मण्डल था।

स्वार्थ और सिद्धि

...

मण्डल ने निश्चय किया कि महर्षि के कानों पर इस तरह जू नहीं रेंगेगी। इसलिए गीतेश्वर को निष्कासित करने का संकल्प संचालन मंडल के माध्यम से इस मण्डल ने उठाया।

आचार्य बम-बम को जो उस जीवन में सियार रूपधारी सिंह थे, अपना नेता चुना। संचालक-मण्डल की गोष्ठिया बतरस का अखाड़ा बन गयीं। हुआँ-हुआँ वहाँ पर अपना रूप-स्वर झंकृत करने लगा।

महर्षि के सम्मुख अनेकों बार कुलपति गीतेश्वर ने उत्तरदायित्व से मुक्ति की याचना की। महर्षि ने सदा मुस्कराकर केवल एक ही उत्तर दिया—मुझे छोड़कर जाना चाहते हैं ?

कुलपति लज्जित हो लौट आते थे यद्यपि उनमें इससे कार्य करने की नयी स्फूर्ति और शक्ति आ जाती थी।

कुलपति के चरित्र के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न प्रकार की अफवाहें वायु मण्डल में चक्कर काटने लगीं। कुलपति सशंक से रहने लगे। मण्डल ने समझा विजय निकट है। और उत्साह से अपने कृत्य में माण्डलिक उसी प्रकार लगे जैसे कभी मेघनाद लक्ष्मण-बध की कामना से इष्ट-साधन में लगा था। आचार्य बम-बम की अतुल शक्ति से मंदिर का कोना-कोना हिलने लगा।

× × ×

कुलपति महोदय,
महर्षि-मन्दिर,
ज्ञान-धाम।
मान्यवर महोदय,

सम्भवतः आप इस तथ्य से परिचित हैं कि आचार्य बम-बम यद्यपि कृषि-ज्ञान के महान अधिकारी यहाँ वैधतः हैं तो भी किसी भी क्षेत्र में

उनका प्रभाव आप से कम नहीं है। इसलिए और अधिक दण्ड का भागी न बन जाऊँ, कृपया मेरा नाम छिपाइयेगा अन्यथा मेरा भविष्य ही नष्ट हो जायेगा।

मैं जीवन में न तो कभी द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ और न ऐसा अवसर ही कभी आया कि कक्षा में प्रथम न होऊँ।

दो वर्ष हुए मैंने कृषि-विज्ञान में अनुसंधान का कार्य आपके विद्या मन्दिर में आरम्भ किया। मेरे साथ ही आचार्य बमबम के पुत्र भी उनके ही निर्देशन में अनुसंधानकर्त्ता बने।

अभीतक अनुसन्धान के डग में मैं एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सका हूँ, इसलिए नहीं कि मैं नित्य उनकी सेवा में उपस्थित नहीं होता, इसलिए नहीं कि मैं नित्य पढ़ता नहीं, और न इसलिए ही कि शोध के स्वरूप के ज्ञान के ग्रहण की क्षमता ही मुझमें नहीं है अपितु इसलिए कि वे दिन-रात विद्यालय संचालन की राजनीति में इतना अधिक व्यस्त रहते हैं कि उन्हें अवकाश ही नहीं है कि शोध निर्देशित कर सकें। दूसरे उनके राजनीतिक चक्र-चाल में मैं कहीं भी अपने को फिट नहीं कर पाता। तीसरे यह कि जो भी अनुसंधान-उपाधि पहले प्राप्त कर लेगा विद्यालय की सेवाओं में उसका स्थान स्वयं प्रथम अधिकार प्राप्त कर लेगा।

अपने लड़के से सबको ममता होती है, बमबम जी को भी; उसकी नौकरी की चिन्ता सबसे अधिक उसके पिता को ही होनी चाहिए। जो पिता अपने पुत्र को योग्य नहीं बनाता वह समाज में निरादृत होता है पर बमबम जी सभी ओर से आदृत हैं इसलिए इस क्षेत्र में भी आदर प्राप्ति-योग से वे पिछड़ना नहीं चाहते।

इसलिए स्वयं उन्होंने 'हल के प्रयोग' विषय पर एक प्रबन्ध अपने पुत्र के नाम लिखा है। उसके दो परीक्षक बाहरी हैं; एक वे स्वयं।

प्रबन्ध की विशेषता यह है कि उनमें १००-१२५ पेज तो विषय से सम्बद्ध सामग्री है और शेष स्वयं उनका स्नातकोत्तर परीक्षा में लिखा गया प्रबन्ध।

यद्यपि उन्होंने दो परीक्षकों से पत्र भेजकर परिणाम मँगवा लिया है तो भी जो पत्र उन्होंने भेजा है, उसकी एक भी मूल कापी इस पत्र के साथ संलग्न है। उनके एक पत्र द्वारा प्रेषित परीक्षा फल उनके कलकत्ते से लौटते ही भेज दिया जायेगा। परीक्षा-फल टाइप हो गया है वह भी संलग्न है।

मैं जानता हूँ, मेरा यह प्रयत्न निष्फल ही जायेगा; क्योंकि आचार्य बमबम के भय से सभी आक्रान्त हैं; संभवतः आप भी।

आज उनके प्रभाव से मन्दिर की धरती डगमगाती है।

कृपाकर अगर आप न्याय न कर सकें तो मेरा नाम तो मत ही प्रकट कीजिएगा।

बिनम्र।

......

...   .

×   ×   ×

मन्दिर में इधर बड़ी सनसनी है। चारो ओर बड़ी भयंकर चर्चा है कि बमबम जी के नेतृत्व में शीघ्र ही कुलपति के निष्कासन का प्रस्ताव आनेवाला है। ऐसा भी प्रचारित है कि महर्षि से कुछ अध्यापकों का एक प्रतिनिधि मण्डल इस सम्बन्ध में शीघ्र ही मिलने वाला है। तमाशार्थी

इधर-उधर राजनयज्ञ अध्यापकों से मिल मिलाकर वस्तु स्थिति का ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं और ऐसी-ऐसी बातें ऐसे-ऐसे शब्दों में सुनने को मिल रही हैं जिनका अर्थ हिन्दी-शब्द-सागर में आज तक लिखा ही नहीं गया।

कुलपति के पास अनेक धमकी के गुमनाम पत्र रोज आ रहे हैं कि छोड़कर चले जाओ; नहीं तो ठिकाने लगा दिए जाओगे।

यह सब तो हो रहा है पर कुलपति सागर के महाद्वीप की भांति संकट की लहरों में अडिग पड़े हैं। यह देखकर लोगों को आश्चर्य भी होता था।

आज अनुसंधान-समिति की बैठक है, आज आचार्य बमबम का दल और भी प्रसन्न है! उनके मण्डल के अनेक आचार्यों के पट्ट-शिष्य अनुसंधान-उपाधि से विभूषित होंगे। शीघ्र ही वे मंदिर की सेवा में अपनी इस उपाधि की प्रभुता के कारण न्यस्त किए जायेंगे। इस प्रकार शीघ्र ही अध्यापकों में बमबम समर्थक दल की संख्या अत्यन्त बड़ी हो जायेगी।

आखिर वह पुण्य बेला आ धमकी। कुलपति ठीक समय पर पधारे।

बैठक प्रारंभ होते ही विभिन्न विद्यालयों के प्रधानाचार्यों ने अपने विद्यालय में अनुसंधान कार्यों में सफल छात्रों के सम्बन्ध में परीक्षकों का मंतव्य उपस्थित करना आरंभ किया।

कार्य-सूची में अंतिम नाम आचार्य बमबम का था। उन्हें एक ही छात्र का परीक्षाफल पढ़ना था।

कुलपति गीतेश्वर ने उनकी बारी आते ही कहा कि कृपया पीठस्थविर महोदय स्वयं बमबम जी के अन्तर्गत अनुसंधान करनेवाले छात्र के प्रबंध के संबंध में संस्तुतियाँ उपस्थित करें।

पीठस्थविर ने कहा—कुलपति महोदय, यह प्रसन्नता की बात है कि श्री बमबम जी के निर्देशन में उनके सुपुत्र ने अनुसंधान कार्य सम्पन्न किया है। पर खेद है कि गुरुकुल की मर्यादा-संहित के अनुसार पिता पुत्र का परीक्षक नहीं हो सकता।

(जोर से शोर)

आचार्य बम बम—आपको बताना चाहिए था ? आपने पहले क्यों नहीं बताया।

पीठस्थविर—प्रतिवर्ष मर्यादा-संहिता की कापी आचार्य बमबम को दी जाती रही है और जिस वर्ष यह नियम बना इस नियम का सर्वाधिक विरोध आपने ही किया था। इसलिए, माननीय कुलपति महोदय, यह कैसे माना जा सकता है कि आचार्य बमबम इस नियम को नहीं जानते। दूसरे जब तक आचार्य बमबम यह सूचित न करें कि अमुक मेरा पुत्र है यह कैसे जाना जा सकता है कि कौन उनका पुत्र है ?

(शोर मचता है, यह चाल है)

कुलपति—शांत-शांत, पीठस्थविर विवरण सुनाते रहें।

पीठस्थविर—इतना ही नहीं, यदि आचार्य बमबम की आज्ञा हो तो वे पत्र पढ़ दिए जायं जो उन्होंने परीक्षा फल प्रभावित करने के लिए गुप्तरीति से भेजा है ?

आचार्य बमबम—सभा मर्यादा के प्रश्न पर ?

कुलपति—अनुमत ? इन पत्रों की प्रमाणिकता के संबंध में यदि कुछ प्रकाश डाल सकें···

बमबम—चूँकि मेरे लड़के के बारे में विचार हो रहा है। इसलिए मुझे यहाँ से जाने की अनुमति दी जाय ?

कुलपति—श्री बमबम का व्यक्तित्व अभिभावक के रूप में विलग, निर्देशक-परीक्षक के रूप में विलग और विद्यालय के आचार्य के रूप में अलग है। अभिभावक तो इस बैठक से जा सकते हैं, परीक्षक भी, पर आचार्य के लिए नियम बाधक नहीं है। इसलिए अनुमति भी नहीं है।

(जोर की हंसी)

हाँ पत्रों की प्रमाणिकता के संबंध में ? (पीठस्थविर कुलपति को पत्र देते हैं जिसे बमबम जी देखते हैं।)

बमबम—इतने पत्र रोज लिखने पड़ते हैं कि याद नहीं रहता। हो सकता है कि किसी दूसरे प्रसंग में लिख दिया गया हो क्योंकि न तो इन पत्रों से प्रबंध का नाम और न परीक्षार्थी का नाम स्पष्ट होता है।

कुलपति—पीठस्थविर ! (कुछ तालियाँ बजती हैं।)

पीठस्थविर—आपके आचार्यत्व ग्रहणोपरान्त यह पहला और एक मात्र प्रबंध है। साथ ही इसके अतिरिक्त वे किसी और प्रबंध के इस मंदिर के परीक्षक भी कभी नहीं रहे हैं।

(एक आवाज—दूसरे विद्यालय से संबंद्ध प्रबंध हो सकता है।)

कुलपति—शांति।

पीठस्थविर—ऐसा पत्र पीठस्थविर को उन परीक्षकों से प्राप्त है कि ये पत्र आचार्य बमबम के ही हैं ? और भी प्रबन्ध में १३८ पृष्ठ से अन्ततक की सम्पूर्ण सामग्री आचार्य

बमबम की प्रकाशित पुस्तक से शब्द शब्द उसमें समाहित हैं ! पुस्तक यहां है और प्रबन्ध भी। ऐसी स्थिति में मैं कुलपति के माध्यम से आप सबसे निवेदन करूंगा कि यह परीक्षाफल रोक लिया जाय और कुलपति अवश्यक कार्यवाही करें !

(एक जाँच समिति बना दी जाय—एक आवाज)

कुलपति—अभियोग प्रमाणित है। विद्यामन्दिर की मर्यादा भ्रष्ट न हो अतः विशेषाधिकार से सम्बन्धित छात्र को पाँच वर्ष के लिए भारत भर के विश्वविद्यालयों से निष्कासित करने का आदेश देता हूँ तथा ……

(क्षमाकिया जाय—एक आवाज)

ऐसे शिक्षण-शास्त्रियों को हीन समझता हूँ जो शिक्षा की मर्यादा डुबानेवालों के प्रति दया की कामना रखते हैं। इसलिए श्री बमबम को आदेश देता हूँ कि वे २४ घण्टे के भीतर मन्दिर के पीठस्थविर को अपने पद का भार सौंप मन्दिर की सेवाओं से निवृत्ति ले यहाँ की भूमि छोड़ दें।

आज की बैठक समाप्त होती है।

बमबम—मैं तो जा रहा हूँ पर मेरे आदमी रहेंगे ? वे आपसे और पिठस्थविर से समझलेंगे ? महर्षि के कुत्तों की यह हिम्मत ?

(कहते हुए बाहर।)

कुलपति—पिठस्थविर; इनका इस माह का वेतन बिना मेरी अनुमति के न दिया जाय ? और कार्यवाही की सम्बन्धित सूचना इन्हें तत्काल भेज दी जाय।

× × ×

स्वार्थ और सिद्धि

महर्षि मन्दिर के तीन बहुत बड़े स्तम्भ यद्यपि अपने आप पाप की गगरी खुले बाजार में फूटने के कारण मन्दिर से बिदा किए गए। पर गगरी में का द्रव मन्दिर के रास्तों पर ही तो बहा था। शायद गड्ढों में एकत्र भी हो गया था। सड़ने वाले पदार्थों में कीड़े स्वयं पड़ जाते हैं। वह तो रक्तबीज था।

जानेवाले अकेले गए थे पर उनको यहाँ अपने द्वारा जमायी दुकानदारी के लिए छोड़ गए थे; जिनको उन्होंने ट्रेनिंग दी थी; विशेष प्रकार की। यद्यपि वे उनके हाड़-मास के सम्बन्धी-गोती नहीं थे पर शिक्षा के क्षेत्र में उनके द्वारा बोए गए ऐसे अन्ध चेतन जीव थे जिनकी आखें इनके प्रकाश से रास्ता देखती थीं। इनकी आखों को प्रकाश देने की व्यवस्था बाहर रहकर जितनी सुगमता पूर्वक की जा सकती थी, उतना कुल-मर्यादा की बेड़ियों में बध कर नहीं। प्रतिहिंसा की अग्नि से इनके द्वारा लेसा गया किराशन के स्वार्थ का दीपक बुझा नहीं, एकांत टिमटिमाता रहा।

महर्षि को जब यह ज्ञान हुआ कि स्वार्थ के घुन मन्दिर के दर-दीवार की नींव तक पहुँच गए हैं तो उनकी आत्मा हिल उठी। उनकी तिरछी कमर झुककर बिलकुल टेढ़ी हो गयी।

कुलपति को उन्होंने बड़े आग्रह से बुलाया था; उसकी विद्वता विश्वविश्रुत थी, उसका ईमान तपे हुए सोने की भांति सदा से झलकता आया है। उसका शासन प्रेम के बल से लोहे का परिणाम उपस्थित करता रहा है, उसने कभी भी पद के लासे से साटने के लिए इच्छा का कम्पा नहीं लगाया। आज वह सेवा के लिए यहाँ तिरस्कृत हो रहा है; वह जाना चाहता है; यदि चला गया तो मन्दिर का भविष्य बरसात की काली रात्रि की भांति डरावना हो जायेगा। यह चिन्ता उन्हें खाए जा रही थी।

एक दिन उन्होंने एकांत में कुलपति गीतेश्वर को बुलाया। उनकी आँखें करुणाद्रवित थीं; उन्होंने कहा —"आज आपको कुछ कहने-सुनने के लिए नहीं, मंदिर के संबंध में कुछ अंतिम बातें करने के लिए बुलाया है। मैं वचन चाहता हूँ, विश्वास रखें आपके सामर्थ्य से बाहर की बात नहीं करूँगा।"

"मंदिर के संबंध में सदा आपकी बात ही अंतिम रही है और आज भी वही होगा, महर्षि, आप चिन्ता न करें।"

"जीवन का अंतिम लालसा मेरी पूरी हो चुकी है। स्वतंत्रता का सूर्य अब पूरब में उगने ही वाला है; रात ढल चुकी है, ऊषा की पग-ध्वनि मेरे कानों में पड़ रही है।

"मेरा एक लड़का था जिसे मैंने अपने साथ रखकर विद्या-मंदिर की सेवा के लिए तपनिष्ठ बनाया था; पूर्वजन्म के न जाने किस पाप-परिणाम के कारण वह सदा के लिए साथ छोड़कर चला गया। अब मंदिर का पूर्ण उत्तरदायित्व आपके हाथ में है। यह मठ और बिहार न बनने पाये; अपितु स्वतन्त्र भारत में सत-ज्ञान विज्ञान की विश्व में यह सबसे महती पाठशाला हो, ऐसा प्रयत्न आप जीवन भर करें। बस और कुछ नहीं कहना है। ब्राह्मण को एक ब्राह्मण द्वारा दिया गया वचन पूरा होगा?"

"आप शतायु हैं, महर्षि। चिन्ता न करें।"

न जाने क्यों इतनी बड़ी बात दो मिनट में ही निपट गई। उस समय दोनों की आँखें भर आयीं थीं, और वाणी अवरुद्ध हो गयी थी। यह बात वहां उपस्थित महर्षि के एक परम सेवक से ज्ञात हुई।

× × ×

इस घटना के घटे अधिक समय नहीं बीते कि एक दिन क्या कई दिनों तक मोटे काले बार्डरों के बीच महर्षि के तिरोधान का समाचार छपता रहा, लोगों की शोकाकुल वाणी उनकी यशगाथा से धन्य होती रही। मंदिर अनाथ हो गया।

अच्छा अवसर पाकर मठ के उत्तराधिकार का अवसर सम्मुख देख स्वार्थ के कीड़ों ने भनभनाना आरंभ कर दिया।



राम जानें कैसे ?

***

अभी अधिक दिन नहीं हुए इस विद्या मंदिर से स्नातकोत्तर परीक्षा में सकुशल उत्तीर्ण एक छात्र ने अपने एक बाहरी मित्र को इस महर्षि मंदिर के संबंध में उसकी जिज्ञासा शांति के लिए निम्नांकित विवरण इधर लिख भेजा था। यहीं की नहीं सर्वत्र यही स्थिति है।

पत्र का मंदिर से संबद्ध अंश यहाँ इसीलिए दिया जाय रहा है ताकि आज का इसकी एक झलक मिल सके। यद्यपि कुछ विद्यामंदिरों के संबंध में इससे भी भयंकर बातें उन्होंने लिखीं थीं।

आज यह विद्यालय देश का चर्चा की पुनः विषय बन गया है। उसे लेकर जो चिन्ता देश में परिव्याप्त होगयी है वह इस बात का प्रतीक है कि विद्यालय के सनातन कीर्तिमान पर लगने वाले कलंक के धब्बों को आज भी देश अपने ऊपर लगा हुआ कलंक मानता है। इस ममता का मूल कारण यह है कि जिस प्रकार ज्ञान-धाम कभी साम्प्रदायिक नहीं; उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम किसी का न होकर सब का रहा, उसी प्रकार महर्षि मंदिर भी ज्ञान धाम का होते हुए भी देश का रहा है। यद्यपि ज्ञानधाम द्वारा प्रदत्त भूमि पर यह अवस्थित है; इसे बसाने के लिये अनेक गांव उजड़ गए पर ज्ञानधाम का प्रबुद्ध वर्ग न तो वहाँ शासन में है और न भविष्य में उस पर हावी होने का संकेत दे रहा है और न यही चाहता है कि उसके विशाल हृदय के प्रतीक इस विद्यामंदिर को संकुचित कर उसकी सनातन गौरवमयी परम्परा का विनाश हो।

इस ज्ञानपीठ की चिन्ता केवल देश को ही नहीं सरकार और उससे बढ़ कर शासकों को है, यह अंधकार से होने वाले अजस्र प्रहार के

बीच वह अमृत कवच है जिससे भविष्य की निराशामयी कल्पना को प्रकाश की जीवन-चेतना मिलती है। महर्षि मंदिर में जो कुछ हो रहा है उसके पीछे एक, दो साल की तैयारी नहीं अपितु दशकों से युद्ध को ध्यान में रखकर किये जाने वाले वे प्रयत्न हैं जिनकी लीला का विवरण आज तक कहीं उपस्थित ही नहीं किया जा सका, कुछ भयवश, कुछ संकोचवश कुछ निरपेक्षतावश और सबसे बढ़ कर मंदिर की कीर्ति रक्षा के प्रेमवश। कलंक तो लग ही चुका है, उसे अब भी समूल नष्ट नहीं किया जाता तो चाहे दोष किसी का हो मंदिर ज्ञानधाम के सनातन गौरव को गंगा में प्रवाहित कर देगा, भला यह कौन भारतीय चाहेगा।

यह मंदिर स्वतन्त्र, सर्वतन्त्र ऐसा स्वशासित प्रदेश सदा से रहा है, जहाँ की तपस्या मूलक शांति की मर्यादा-व्यवस्था केवल अनुशासन की कर्त्तव्य-चेतना से प्रदीप्त रह सकती है और रही है। ज्ञान-धाम अपने में एक पूर्ण राज्य है, जहाँ नगर की समस्त सुचारु व्यवस्था से लेकर कृषि तक और प्रारम्भिक ही नहीं ज्ञान-विज्ञान एवं कला के प्राचीन से लेकर अधुनातन ज्ञान-भंडार के कोष को सतत समृद्धशाली बनाने का साधना-मय लोक मंगल विधायक आयोजन किया गया है। इसलिये समृद्धि की आधुनिक व्यवस्था में गुरुकुल के प्राचीन आदर्शों से अनुप्राणित यह तपस्या भूमि तथा ऋषि कुल है जहाँ शासक को चोंच लड़ाने का अधिकार नहीं। इस प्रदेश में सामाजिक नियम और व्यवस्था की नियामिक शक्तियों का प्रवेश स्वतंत्र भारत में भी वर्जित रहा है ताकि गुरुकुल की परम्परा में राजकीय हस्तक्षेप की तर्जना उसके स्वतंत्रता के सत्व पर अपनी छाया भी न डाल सके। इसलिए किसी भी मामले में कभी पुलिस अपनी वर्दी में मंदिर में नहीं आती थी।

स्वार्थ और सिद्धि

आधुनिक व्यवस्था संचालन के लिए अनेक वर्ग मीलों में अवस्थित सहस्त्रों छात्र तथा अन्य ज्ञान धाम स्थित सहस्त्रों व्यक्तियों के लिए जहाँ उसका अपना बिजली घर है, अपना पानीकल है, वहीं उसकी बहुत बड़ी अचल सम्पत्ति विद्यालय क्षेत्र से बाहर भी है। इस व्यवस्था-संचालन के लिए तथा ज्ञान का ज्योति दीप्त करते रहने के लिए गुरुकुलों के कुलपतियों से अधिक यहाँ के कुलपति का उत्तरदायित्व होता है। केवल शिक्षा-शास्त्री मात्र ही यहाँ के सफल कुलपति नहीं हो सकते; अपितु सफल प्रशासक के व्यक्तित्व का संनियोजन भी कुलपति के व्यक्तित्व में महर्षि मंदिर की अभिवृद्धि के लिए आवश्यक है। ऐसा दुर्लभ विलोम दिशागामी गुण का समन्वय बड़ा विरल होता है। अतः यहाँ कुलपति का उत्तरदायित्व बड़ा गहन है। पदाभिलाषा गहनता और तपस्या नहीं स्वार्थमूलक लालसा से अधिक प्रभावित होती है और जहाँ स्वार्थ की वृद्धि हुई वहाँ स्वशासित व्यवस्था अनियंत्रण की ओर अभिमुख होता है। यद्यपि महर्षि-मंदिर के कुलपति का पद काँटों का ताज है तो भी उसके प्राप्ति की सतत अभिलाषा यौवन में काम की भाँति उनके भीतर बराबर रही है जो स्वार्थी रहे हैं। पदाभिलाषी व्यक्ति हुआ करते हैं पर जहाँ चुनाव की प्रथा होती है वहाँ पदाभिलाषी वर्ग हो जाया करता है। यह वर्ग अच्छा भी हो सकता है और बुरा भी। उत्तरदायी भी और स्वार्थी भी। वहीं रोजी रोटी के लिये सेवा में लगे व्यक्तियों का गुट सामान्यतः जब वहीं का प्रशासक बनना चाहता है तो निश्चय ही उत्तरदायित्व की भावना उसमें नहीं होती अपितु स्वार्थ की भावना से उसका प्रत्येक डग उठता है। स्वार्थ की यही भावना मंदिर में युद्ध का कारण बनी।

मंदिर में प्रशासनिक कार्य शैक्षणिक कार्य के सहायकमात्र हैं इसलिये

मूलतः शैक्षणिक-व्यवस्था का जहाँ प्रशासनिक व्यवस्था स्वयमेव उपस्थित हो जाती है उल्लेख आवश्यक है। मंदिर में शिक्षा-व्यवस्था का जहाँ तक सम्बन्ध है, उसका संचालन विभिन्न विद्यालयों के अन्तर्गत होता है। इसका प्रधानाचार्य एवं विभागाध्यक्ष वहाँ सर्वाधिक सत्ताधारी व्यक्ति होते हैं। इनके हाथ में छात्रों काप्रवेश, उनके पढ़ाई की व्यवस्था, अध्यापक का कार्यक्रम-काल-विभाजन, विषय-विभाजन, अनुसंधान की व्यवस्था, छात्रवृत्ति, शुल्क-क्षमा, अन्य छात्र-कल्याण कार्य तो रहता ही है साथ ही छात्रावासों के प्रधान संरक्षक भी ये ही होते हैं। इसलिए छात्रावासों की व्यवस्था पर भी इनका पूर्ण नियंत्रण रहता है। इसके अतिरिक्त विद्यालय की विभागीय नियुक्तियों आदि पर नियमतः तो नहीं; तथ्यतः इनका ही अधिकार होता है, चपरासी और क्लर्क आदि की नियुक्तियाँ तो इनके बाएँ हाथ का खेल है। विभागाध्यक्ष प्रायः ८ से १७।। सौ वेतन पाते हैं, विद्यालय के भीतर कक्षाओं में एक डेढ़ घंटे पढ़ाते हैं और सामान्यतः छात्रों को अनुसंधान निर्देशित करते हैं। इनकी संस्तुति पर प्रधानाचार्य तत्सम्बन्धी विभागीय व्यवस्था चलाते हैं। उत्तरदायी व्यक्तियों को तो अधिकार से अधिक शक्ति पर भरोसा होता है। इसलिए किसी भी स्थिति में उनके स्खलन का प्रश्न नहीं उठता। लेकिन पदाकांक्षी राजनयज्ञ लोगों को ऐसी स्थिति में अपनी शक्ति दृढ़ करने का पर्याप्त अवसर भी मिलता है। ऐसी स्थिति में अनुत्तरदायी पदाभिलाषी लोगों ने अपनी शक्ति बृद्धि के लिए क्या क्या किया है; चाहे वे किसी भी धर्म और तीर्थ के हों बिना नाम-धाम के उसका उल्लेख कर लेना अप्रासंगिक न होगा :—

ऐसी समय–सारिणी बनाना कि विभाग में उनके समर्थक व्यक्ति

मनोनुकूल समय प्राप्त कर सकें और विभागाध्यक्ष की राजनीति में योग दे सकें।

नियुक्ति के समय ऐसे विशेषज्ञों की नियुक्ति के लिए नाम-प्रेषण जो बाहरी होते हुए भी विभागाध्यक्ष की हां में हां मिला सकें। नियुक्ति उप-समिति में प्रधानाचार्य का सहयोग लेने पर विभागाध्यक्ष स्वयं बहुमत में रहता है। इस प्रकार ऐसे व्यक्तियों को ही नियुक्ति कराना जो विभाग में उनकी शक्ति बढ़ा सकें। दूसरे स्थान से आये विशेषज्ञों को प्रतिदान स्वरूप उनके लिए वही सेवा विशेषज्ञ के रूप में प्रस्तुत करना जो सेवा बाहर से आए विशेषज्ञ इनकी कर गए हैं।

ऐसे लोगों को अपने अन्तर्गत अनुसंधान कराने में प्राथमिकता देना जो अपने काम आ सकें, उनको कक्षायें देकर, अनुभवी बनाकर, विभाग में नियुक्त कराना, उन्हें अनुसंधान तथा अन्य वृत्तियां दिलाना तथा उनके माध्यम से अपने प्रसार को बढ़ाना। निम्नस्तर के उनके द्वारा लिखे प्रबंध पर राजनीतिक मित्र परीक्षक प्रतिदान के आधार पर नियुक्त कर उपाधि दिलाना तथा ऐसे लोगों को अपने यहां या अपने प्रभाव क्षेत्र में अन्यत्र नियुक्त करा अपने प्रभाव क्षेत्र में अपनी स्थिति दृढ़ कराना। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि इन छात्रों से पुस्तकें लिखा कर अपने नाम पर या संयुक्त लेखक के रूप में छपवाना और उसकी प्रायः समस्त आय ले लेना।

परीक्षावाली कक्षाओं में विधान एवं नियम की मर्यादा का उल्लंघन भी कर ऐसे परीक्षक विभागीय और बाहरी नियुक्त करना ताकि परीक्षा-फल के प्रभावित करने को पूर्ण सत्ता हाथ में रहे। इस शक्ति के द्वारा; छात्रवृत्ति के द्वारा, शुल्क क्षमा तथा अपने अध्यापकों के द्वारा छात्रों पर

पूर्ण नियंत्रण स्थापित करना और छात्रों का उपयोग अपने हित में करने के लिए अपने निकटस्थ छात्रों का प्रवेश अपने विभाग में कराना।

राजनीति की आर्थिक व्यवस्था के लिए प्रकाशक विशेष तथा अपने निकटस्थ लेखकों एवं संबन्धियों की पुस्तकें उपयोगिता एवं योग्यता को तिलांजलि दे पाठ्यक्रम में रखना, उनका मूल्य सामान्य मूल्य से अधिक रखवा मुनाफा खोरी की वृत्ति द्वारा विशेष लाभ अपने अधिकार में करना।

यह सब इसलिए भी होता है कि ऐसे विभागाध्यक्ष एवं प्रधानाचार्य हैं जो संभवतः आधुनिक शिक्षा में वैधतः प्रवेशिका से अधिक नहीं हैं। एक विभाग में तो अनेक वरिष्ठ अध्यापक उस विषय के न होकर दूसरे विषय से स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण हैं। यह दयनीय स्थिति कुछ लोगों ने स्वस्वार्थ के लिए शिक्षा—व्यवस्था की यहां पर कर डाली है।

इस प्रकार अध्यापकों, परीक्षों, विद्यार्थियों की एक बहुत बड़ी दृढ़ अंध भक्त सेना आर्थिक शक्ति के साथ विभागीय अध्यक्ष के कब्जे में होती है। प्रशासन के अधिकार की ओर जहाँ यह सेना अज्ञातरूप से अभियान करती रहती है, वहीं न्याय प्रिय, अध्ययन—चिंतन प्रेमी छात्र परिश्रम एवं तपस्या से विरत हो जाता है क्योंकि परिश्रम अच्छी श्रेणी और अभ्युदय का कारण वहाँ नहीं बन सकता और न वे अध्यक्ष की शक्ति से टकरा कर अपने को चकनाचूर करने की ही स्थिति में रहते हैं; क्योंकि उनका भाग्य खतरे में रहता है। इसलिये सब देख सुन कर भी वे मौन रह जाते हैं। कुछ सहज भोग की लिप्सा से भ्रष्ट भी। विभागाध्यक्ष को इस कार्य के लिए इतना अधिक समय बाहर और भीतर प्रभाव–वृद्धि में लगाना पड़ता है कि उसके ज्ञान का विकास अवरुद्ध मात्र

ही नहीं हो जाता, उसमें घुन भी लगने लगता है। फलतः ज्ञानार्जन का मूल उद्देश्य ही यहाँ विलुप्ति की राह नाप रहा है।

प्रधानाचार्यों की शक्ति महर्षि-मंदिर में अनेक अर्थों में बहुत बड़ी है। वे अपने विभाग के अध्यक्ष होते हैं, मंदिर में अपने विद्यालय तथा मंदिर के संचालन में उनका प्रमुख हाथ होता है। मंदिर शिक्षा-व्यवस्था नियामिका समिति आदि के सदस्य ये ही सज्जन होते हैं। विद्यालय की उन्नति, अपने विभाग का दायित्व तथा छात्रावास में प्रधान निरीक्षक के रूप में न केवल उनकी शिक्षा-व्यवस्था के ये भाग्यविधाता होते हैं अपितु मंदिर में उनके जीवन के नियमक भी होते हैं। अपनी विभागीय पुष्टता के लिए प्रायः शक्तिहीन राजनीति-विशारद विभागाध्यक्ष के प्रधानाचार्य प्रतिदान में सहायक होते हैं। इसका परिणाम भयावह होता है। अनेक ऐसे प्रतिष्ठित शिक्षा-शास्त्री अभी तक अपने मूल पद पर ही रह गये हैं जब कि उन्हीं के चेले विद्यालयों के प्रधानाचार्य बन गए। यदि किसी राजनीति विशारद को उसकी इच्छानुसार गैर कानूनी ढंग से पद नहीं दिया गया तो जो लोग कानून और न्याय के पक्षपाती होते हैं उनको दुर्गति की प्राप्ति होती है। अनेक विभागाध्यक्ष तो अन्यत्र की व्यवस्था के कारण इतनी कक्षाएं भी नहीं पढ़ा पाते जो दोनों अंगुलियों पर गिनी जा सकें। प्रधानाचार्य विभागाध्यक्ष तो होते ही हैं छात्रावासों की व्यवस्था में सोच-समझ कर छात्रों को स्थान देने के उपरान्त उनको भी कितना अवकाश सेवा का मिल पाता है राम जाने, यद्यपि वे छात्रावास की व्यवस्था के लिए निःशुल्क आवास और एक अध्यापक का वेतन अतिरिक्त पाते हैं। परिणाम यह होता है कि विद्यालय के लेखक उपाचार्यों से भी शक्तिशाली बन जाते हैं।

स्वार्थ के सुचारु संचालन के लिए प्रधानाचार्य अपना दल सजाते हैं, और मंदिर पर हावी हो जाते हैं। जिन्हें किन्हीं कारणों से भी पद नहीं मिल पाता है वे इनकी सेना में सम्मिलित होते जाते हैं। इतना ही नहीं घुसपैठ कर सामा-नियुक्तियों द्वारा चपरासी एवं क्लर्क भी अपने रखवाते गये हैं। कहना न होगा अनेक राजनीति विशारद प्राध्यापकों के भाई, पट्टीदार एवं रिस्तेदार दूसरे महत्व के कार्यालयों में चपरासी, एवं क्लर्क के पद पर हैं जो अन्यत्र की गुप्त सूचना-आदि गुप्तचर की भाँति देते रहते हैं। उदाहरण के रूप में एक प्राध्यापक के दो सगे भाई अन्यत्र क्रमशः एक छात्रावास में लेखक तथा एक स्टोर कीपर हैं। उनके दो सगे पट्टीदार अन्य दो विद्यालयों में भी हैं। इनके घोर नियंत्रण में चपरासी भी हैं। ऐसे प्रधानाचार्य भी हैं उनके विद्यालय का नाम किसी विषय के साथ जोड़ने पर अपने उपयुक्त समझ उन्हें, अनुसंधानकर्त्ता भी बना लेते हैं, भले ही किसी अन्य विषय में वे स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण हों। उपाधि तब तक नहीं मिलती जबतक कि वह पूर्ण रूप से अपनी शक्ति की अंतिम चेतना तक काम न आ जाय। कालेज संबन्धी आर्थिक नियंत्रण के भाग्य-विधाता प्रधान आचार्य होते हैं। यह स्मरणीय है।

इतना ही नहीं प्रतिष्ठान के अतिरिक्त अपनी शक्ति वृद्धि के अन्य साधनों का उपयोग और प्रयोग भी ये बाहर करते हैं। यथा जो कभी गुरु गोलवलकर की जयंती के आयोजक भक्त बनते हैं, वे आचार्य नरेन्द्र देवजी को प्रभावित करने के लिए प्रजासोसलिस्ट, कांग्रेस का मन जीतने के लिये कांग्रेसी तथा अपने विस्तार के लिए सोशलिस्ट उम्मीदवार के समर्थक और जरूरत पड़ने पर करपात्री जी और मार्क्स के एक साथ भक्त भी। बढ़ते हुए प्रभाव के परिणाम से ये विभिन्न विद्यालयों एवं संस्थाओं

के अधिकारी बन कर अपने व्यूह को दृढ़ करते हैं। कभी अखिल भारतीय कभी सम्प्रदायहीनता, कभी साम्प्रदायिकता, कभी क्षेत्रीयता और जरूरत पड़ने पर जाति और जनपद वादी बनने में ही नहीं बल्कि उसकी बनावट के प्रचार और प्रसार में भी जी खोलकर भाग लेते हैं।

कभी कभी नवनीत द्वारा और कभी कभी लोगो से गलत काम करा उन्हें वशीभूत करने का ये प्रयत्न करते हैं। प्रतिवर्ष विजयादशमी के पहले अपनी सेना का यथायोग्य पूर्ण या आंशिक प्रदर्शन कर लोगों पर अपने प्रभाव का आतंक भी एक ओर प्रकट करते हैं दूसरी ओर आनेवाले कुलपति का अभिनन्दन भी कर उसकी शक्ति और सामर्थ्य की परीक्षा लेते हैं। बड़े-बड़े राज हैं इन छोटे-मोटे लोगों के।

इन कृत्यों के परिणाम स्वरूप मंदिर स्वार्थालय हो गया है। विद्या यहाँ से विलुप्त हो पाताल में चली गयी है, साधना यहाँ से भाग कर कंदरा में छिप गयी है, अंधकार...घोर अंधकार चारो ओर व्याप्त है। अराजकता, पूर्ण स्वच्छन्दता आज इस मंदिर की प्रशासिकाएँ हैं। चेतना के पंख फड़फड़ा विद्याव्यसनी आज उसी प्रकार वहाँ अपनी सत्व रक्षा कर रहे हैं जैसे कभी लंका में मनुष्यता। आज भी वहाँ विद्वान हैं, विद्याव्यसनी हैं, अध्यापक हैं, मर्यादित नैतिकता के पालक-छात्र हैं पर अंधकार में देखनेवाली दृष्टि उन्हें नहीं मिली है। सम्भवतः इसलिए भी ये मौन रहते हैं।

हमारे कहने का आशय नहीं है कि वहाँ अधिकांश भ्रष्ट हैं। बात सर्वथा विपरीत है। वहाँ के अधिकतम अध्यापक सच्चरित्र हैं, उनका नैतिक प्रतिमान बड़ा ऊँचा है, वहाँ के अधिकतम छात्र भी ऐसे ही हैं। किसी

भी विद्यालय के चारित्रिक प्रतिमान से उनका मान ऊँचा है पर वे अन्धेरगर्दी में मौन रह जाते हैं क्योंकि वे इसके अभ्यासी नहीं हैं।

यहाँ २॥ साल बीतते ही कुलपति पर शनि लगता है। चाहे वह नेता, विद्वान, प्रशासक, शिक्षा-शास्त्री निज क्षेत्री या सब कुछ या बहुत कुछ क्यों न हो।

यद्यपि भारत स्वतंत्र हो गया है। पर पता नहीं क्यों इस महर्षि-मंदिर की यह स्थिति है। यहीं कि नहीं देश के अधिकांश की।

इस स्थिति के आने में एक युग का समय भी नहीं लगा। कहानी है इसकी अपनी। पतन की कहानी ... स्वार्थ की कहानी ... विडम्बना की कहानी ... अनैतिकता की कहानी ... अराजकता की कहानी ... कुल द्रोह की कहानी ... देशद्रोह की कहानी ... मर्यादा भंग की कहानी ... पाप की कहानी ... सुनिये कान खोलकर सुनिये क्योंकि आप हम सब पापी हैं; पतित हैं, नीच हैं इसलिये कि हमने अपना उत्तरदायित्व नहीं निभाया है; पाप को पनपते देखकर उसकी छाया से बचने के लिए घर में छिप गये हैं; पाप-नाश यज्ञ में योग नहीं दिया है।

यदि बुरा लग गया हो तो क्षमा कीजियेगा कुछ बात ही ऐसी है जो कहे बिना चैन नहीं है क्योंकि आपसे न कहूँगा तो किससे कहूँगा, ममता जो है; आशा विश्वास भी है; आप जनता जनार्दन जो हैं?

जय हे; भारत भाग्य-विधाता......

—:o:—

एक से एक महा रणधीरा

***

एक दो नहीं, इस कहानी के नायक पाँच-सात हैं। उनमें यदि सबका पूर्ण परिचय दिया जाय तो राष्ट्रभाषा में प्रकाशन की व्यवस्था ही नहीं हो पायेगी क्योंकि सरकारी अनुदान विश्व कोश के लिए ही मिल सकता है; इस काम के लिए नहीं, भले ही यह काम विश्व कोश से बड़ा और जरूरी हो। लो लीजिए सबसे पहले विषयाचार्य कुबेराधिपति से मिलिए।

विषयाचार्य कुबेराधिपति

मैं पैदा तो ब्राह्मण के कुल में हुआ हूँ पर कुबेर का खजाना मेरे चरणों के चाप भय से सदा खुला रहता है। युग पैसे का है; ब्राह्मण युग का होता है। इसलिए आज उसका ब्राह्मण सुरक्षित नहीं रह सकता जो पैसों का स्वामी न हो।

यह स्वामित्व मैंने धनिया तोल कर प्राप्त नहीं किया है; बुद्धि के वैभव से प्राप्त किया है। धरती में छिपा धन किसी की दृष्टि से नहीं दीख पड़ता इसके लिए विशेष प्रकार की आँखें चाहिए। रत्नगर्भा के अनन्त वैभव का ज्ञान असामान्य ज्ञान नहीं माना जा सकता।

जब से देश आजाद हुआ है तब से धन कमाने का तौर-तरीका बदल गया है। गणतंत्र में महत्व उसी का हो सकता है जो सरकारी समितियों का सदस्य हो। सरकारी समितियों का सदस्य होने के लिए यह आवश्यक है कि किसी ऐसे सांस्कृतिक पद पर अवस्थित हो जिस पद की महिमा लोक-दृष्टि में उस क्षेत्र में वरिष्ठता प्रदान करानेवाली हो। साथ ही इसके लिए एक-दो लोक-विधायक हमेशा अपनी मरजी पर नाचने वाले ऐसे क्रीतदास होने चाहिए जो वांछानुसार हर एक काम कर सकें। हर एक काम किसी से तभी कराया जा सकता है जब उसको गलत स्थिति

में रख उसका स्वार्थ सिद्ध किया जाय। इतना ही नहीं इस स्वार्थ-सिद्धि की कुंजी प्रमाणस्वरूप इस प्रकार अपने पास रख ली जाय ताकि जब कभी ऐसा व्यक्ति द्रोह करना चाहे तो दूर से उसके भाग्य की कुंजियाँ दिखा दी जांय और वह अपने काले भविष्य की कल्पना कर भय से भूकना ही बन्द न कर दे अपितु स्वामी भक्ति का पूर्ण आयोजन मरजी मुताबिक जरखरीद गुलाम की भाँति सदा के करना आरम्भ कर दें।

इस कार्य के लिए केवल सूझ-बूझ की ही आवश्यकता नहीं पड़ती अपितु अवसर और व्यक्ति के पहिचान की भी। समयोपयोगितावादी जो नहीं होते ये बराबर इस कार्य में चूक जाते हैं और घर की लेई-पूँजी भी गँवा देते हैं।

जब लियाकत, जिन्ना, नेहरू और पटेल भारत के मानचित्र पर लकीरें खींचकर भारत-माता का रूप बिगाड़ रहे थे उसी दिन मुझे मालूम हुआ कि मेरे जीवन की मान्यता सफल होगी। सत्यता पर्दानसीन ऐसी बीबी है, असत्य बलशाली होने पर जिसपर सदा बलात् कर देता है। असत्य स्वार्थ-साधन में बटवारे के द्वारा ही बलशाली हो पाता है।

इसलिए अवसर देखते ही, व्यक्ति की पहिचान करते ही मैं मैदान में उतर पड़ा। गौरीश्वर को यदि महर्षि मन्दिर से हटाया नहीं जाता तो किसी भी प्रकार से मण्डल को सिद्धि नहीं मिल सकती थी। इसलिए अवसर मिलते ही मैंने यह नारा लगाया कि महर्षि अब नहीं रहे इसलिए उनकी खड़ाऊ ही हमारे लिए अब पूज्य रहेगी और महर्षि-सुत गणेश को निश्चय ही राजतिलक न सही राज्य मन्त्री का पद मन्दिर में प्राप्त होना चाहिए। गणेश इतना अधिक प्रभावित इस नारे से हुआ कि वह मण्डल का अंध भक्त बन गया। उससे लगातार मैंने मन्दिर की

श्री-शोभा की बातें कीं और उसे यह समझा भी दिया कि बिन ममता के जो मन्दिर में राग-भोग लगाते हैं ऐसे पुजारियों का ध्यान सदा दक्षिणा पर रहता है और भी तो; तुम्हें ही तो गीतेश्वर ने इस मन्दिर में अपना सहायक तक स्वीकार नहीं किया था। गणेश अपने हित के लिए मेरे साथ आया। अब मेरा काम था कि उसे सदा के लिए अपने चंगुल में उसके पर काट कर लूँ।

मैंने उसे समझाया यह कार्य सामान्य नहीं असामान्य है। इसके लिए बहुत बड़ी धनराशि चाहिए। वह घबड़ाया। मैंने रास्ता बताया। एक बहुत बड़े व्यापार के बिना यह संभव नहीं था। उस समय लोग देश सेवा के लिए परमिट का चालू रोक पा रहे थे। अब मैं और गणेश साझेदार। यद्यपि इस साझेदारी में हम लोगों का नाम नहीं था तो भी मालिक असली हमीं थे।

इसी समय सोने-सा अवसर सामने आया। उसे मैंने सवा सोलह आने पर क्या तीन अठन्नियों पर भुनाया। व्यापार-वृद्धि के लिए यह आवश्यक था कि मैं पदासीन होऊँ। मैं तबतक पदासीन हो नहीं सकता था जब तक गणेश की प्रतिष्ठा न हो।

गीतेश्वर के सहायक का पद रिक्त हुआ। गीतेश्वर ने सर्वाधिक सदाचारी आश्रम के वरिष्ठ विश्रुत आचार्य को अपना पदाभिलाषी घोषित किया। मेरा नारा था 'जय गणेश'। विघ्न-विनाशन-हर सफल हुए। इसलिए नहीं कि वे योग्य थे अपितु इसलिए कि महर्षि की गद्दी के उत्तराधिकारी थे और संयोग से गोबेल्स की कार्यपद्धति मात्र से ही नहीं-- स्तालिन की रीति नीति से भी मैं परिचित हूँ।

गीतेश्वर ने इस हार को अपनी हार मान ली और वे त्याग-पत्र

देकर यहाँ से चले गए। एक गोली से केवल मैंने दो ही शिकार नहीं किए, तीसरे के लिए भी लासा लगा कम्पा फेंक दिया।

गीतेश्वर वास्तव में असामान्य सद्शक्तियों का जीव उस समय प्रमाणित हुआ। जाने के पहले उसने अपनी गद्दी खाली नहीं की अपितु जगदीश को अपने पद पर आसीन करा कर गया। उस समय यह आवश्यक भी था कि लोग यह समझें कि गणेश पदाभिलाषा से नहीं सेवा-भाव से इस मंदिर में आया है। इसलिए उसका नाम-धाम कहीं लिया ही नहीं गया।

गणेश को मैंने समझाया; युद्ध का श्रीगणेश सफल रहा, पर यह असामान्य युद्ध है, दशकों इसमें व्यतीत हो जायेंगे। इसलिए यह आवश्यक है कि मुझे पदासीन कराओ ताकि लक्ष्मी हमारा साथ न छोड़ें और तुम्हारी स्थायी व्यवस्था भी तो अभी बाकी है। लेकिन यह काम इस भाँति सम्पन्न होना चाहिए कि मैं पदासीन भी होऊँ, इस रूप में कि हमारा व्यापार भी उससे प्रभावित हो और मंदिर पर एहसान भी हो। उपाधियों की कमी तो मेरे पास है नहीं। अवैतनिक आचार्य मुझे नियुक्त कराओ। पञ्चशत मुद्रा मुझे व्यय-मात्र के लिए चाहिए। फिर बस साल छह साल में ही कुलपतित्व हमारे हाथ में होगा।

गणेश भी सामान्य खिलाड़ी नहीं है। उसने यह कार्य इस नीति-मत्ता के साथ किया कि भेद की भनक भी हवा तक को न हुई।

गणेश दिन-रात कुलपति जगदीश के साथ इस प्रकार सहयोग में लगा रहता कि पूर्वार्जित उसकी समस्त कुख्याति सुख्याति में परिवर्तित होने लगी। जगदीश ताव का आदमी था, शान जान से रहने वाला वैसा व्यक्ति मुझे दीखा ही नहीं। चरित्र में महानता, ज्ञान में गंभीरता, गुरुता में

महानता यद्यपि उसकी विशेषताएँ थीं तो भी अपनी प्रतिष्ठा को ही वह जीवन की सबसे बड़ी सम्पत्ति मानकर सदा सेता रहा। उसकी इस कमजोरी से हम भलिभाँति परिचित थे।

यद्यपि सोने का मेरा व्यापार चमक रहा था तो भी मेरा सारा ध्यान हीरे के मंदिर पर सदा से रहा है। आखिर सिद्धि की बेला भी आयी। कुलपति के चुनाव की बेला जल्दी ही आ गयी क्योंकि जगदीश गीतेश्वर के कार्य-काल के एक भाग के लिए ही आए थे।

सारा संसार जानता था कि आज जगदीश पुनः कुलपति चुन लिए जायेंगे। गणेश भी चौबीस घण्टे पूर्व तक यही समझता था, इसलिए जगदीश की वह जय भी बोल आया था पर चुनाव गोष्ठी में लोगों ने देखा कि गणेश का नाम भी प्रस्तावित है और वहाँ उसके समर्थक सर्वाधिक हैं; यद्यपि गणेश ने जगदीश का ही नाम प्रस्तावित किया था।

जगदीश ने इस अप्रत्याशित स्थिति की कल्पना तक नहीं की थी। अन्ततोगत्वा उन्होंने चुनाव लड़ना पसंद ही नहीं किया क्योंकि हार जो जाते। चले गए अपनी इज्जत बचाते हुए; गीतेश्वर के पंजे पर छक्का और नहले पर दहला बैठा दिया।

गणेश अब पूर्ण स्वामी हो गया इस मंदिर का। उसे सोने का अंडा देनेवाली मुर्गी मैं लोक में प्रमाणित नहीं करना चाहता था अपितु कीर्तिशाली पिता का लोकसेवी कर्त्तव्य परायण मंदिर का अनन्य सिद्ध सेवक।

हमने विद्यालय के विकास के लिए बहुत बड़ी बड़ी योजनाएँ बनायीं। रुपये की कमी इसलिए नहीं पड़ी कि सरकार अब अपनी थी; देश के कुबेर भी इसलिए अपने थे। ठीके और फठीकेदार सारे के

सारे अपने। इतनी बड़ी सफलता बुद्धि-चातुर्य के बल पर बिना रक्तपात के चाणक्य ने भी जीवन में प्राप्त नहीं की थी। मैं सदा परदे के पीछे सूत्रधार रहना ही उचित समझता हूँ।

दुनियां को अंधी बनाने के लिए यह आवश्यक होता है कि जो उसकी मान्यताएँ हैं; उसे स्वीकार कर थोड़ी दूर चला जाय। जब उसका विश्वास इतना प्राप्त हो जाय कि वह अंधी होकर पीछे-पीछे चलने लगे तो उसे अपने स्वार्थ के रास्ते पर उसका भला दिखाते हुए मोड़ लिया जाय।

इसलिए ढूढ़-ढाढ़ कर मंदिर में विद्वान उनकी शर्तों पर हम बुलाने लगे। विद्वान् बुलाने में हमारी नीति यह रही है कि लोग समझें कि हम विद्या मंदिर की ज्ञानगरिमा को कैलाश से ऊँचा उठाते चले जा रहे हैं। दूसरी ओर शक्ति-वृद्धि भी अपने सशक्त आदमियों की प्रतिष्ठा द्वारा हम करते चले जा रहे हैं।

पहुँच के लोगों की स्थापना के निमित्त हमने नये विभाग खोले; कुछ को उन्नीत किया; कुछ विरोधी उन्नत लोगों पर अवनत बाहरी या भीतरी लोगों को बैठा दिया। आचार्य कपिलमुनि की स्थापना इसमें सबसे बुद्धिप्रद प्रमाणित हुई।

मैं बाहर चला गया। हमारा रूप-रंग और चाल-व्यापार इन कृत्यों के करते समय सदा गोरखपंथी कापालिक का रहा है। एक विद्यालय के प्रधानाचार्य की नियुक्ति की बात गणेश के सम्मुख आयी। उसके पदाभिलाषी के पद पर बाहर का कोई उचित व्यक्ति नहीं दीखा। पर किसी भी स्थिति में सर्वसोरवा जो अपने दल का एक अन्यतम पौधप है प्रतिष्ठित नहीं किया जा सकता था। दूसरा प्रत्याशी हमारा विरोधी नहीं था; भारत

विश्रुत विद्वान् भी था। गणेश ने सोचा सर्वसोखा को इनके बाद अवसर दे दिया जायेगा। सर्वसोखा गुरु कब के मानने वाले और इधर गणेश की सफलता ने उसे बड़ा अभिमानी भी बना दिया था। दोनों में युद्ध छिड़ गया।

इस अवसर का लाभ हमारे विरोधियों ने उठा लिया। गणेश का उन्होंने साथ देना आरंभ किया। इसी बीच उन्होंने हमारे एक अन्य कमाण्डर को उन्नत नहीं होने दिया। हमारे मण्डल ने इन घटनाओं से सबक ले गणेश की जड़ में मट्ठा देना आरम्भ किया।

मैं विदेश से लौटा तो देखता हूँ कि सारा गुड़ गोबर हो गया है। चूक गया था; कुछ कर नहीं सकता था। समय का यह फेर गृह-कलह के कारण हमें चूहा बनाकर ही माना। गणेश से द्रोह ठीक नहीं था; क्योंकि वह बहुत बड़ा मुहरा था; सेना के सभी सेनापति दल-बल के साथ सर्वसोखा के साथ रण-दुंदुभि बजा रहे थे। ऐसी स्थिति में कुसमय देख मैं मौन हो गया।

इसी बीच एक बहुत बड़ी घटना यह भी घटित हुई कि सर्वसोखा का पुत्र स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण हुआ। वह सेवा के लिए अभ्यार्थी था। गणेश ने उसको भी पदासीन नहीं किया क्योंकि अयोग्य था। शक्ति योग्यता और अयोग्यता तो देखती नहीं और स्वार्थ के द्वारा संगठित शक्ति यदि प्रभुता के पद पर नहीं प्रतिष्ठित की जाती तो उसकी प्रतिक्रिया बड़ी भयंकर होती है। गणेश को यह ज्ञात नहीं था; क्योंकि मूलतः वह ज्ञानी तो रहा नहीं।

गणेश ने ऐसी मर्यादा-संहिताएँ इस आशा से बनवायीं कि मेरी सेना के बल पर अंकुश का ब्रह्मफाश लटकने लगा। नियम का ब्रह्मास्त्र बनाने में हमारे विरोधियों ने गणेश का पूर्ण साथ दिया।

स्वार्थ और सिद्धि

जब नव निर्मित नियम के अनुसार कुलपति की चुनाव बेला आयी तो गणेश के प्रति उत्पन्न प्रतिहिंसा की भावना ने हमारी समस्त सेना को विरोधियों की शक्ति के साथ एक पक्ष में खड़ा कर दिया। गणेश मैदान छोड़कर भागा।

मैं मौन; अवसर की खोज में। समय ने गृह-कलह का मजा मेरे दल को दिखाया। इस कलह के परिणामस्वरूप सर्वसेरवा को शक्ति-संचालन का भार मिल गया था।

यह सब तो हुआ। पर मेरे मूल उद्देश्य में कभी अन्तर नहीं आया। गणेश की ओर मेरी दाँत काटी रोटी आज भी है और जीवन-पर्यन्त रहेगी। वह सदा मेरे काम आया है, और आयेगा क्योंकि बुरे दिनों में भी मैं उसका सदा सहायक रहा यहाँ तक कि उसे स्वतंत्र व्यापारी बना दिया। यद्यपि आज सर्वसेरवा फल देख कर मेरे इस कार्य के प्रशंसक हैं तो भी उस समय मेरी गणेश की मित्रता उन्हें फूटी आखों भी नहीं सुहायी।

जो कुछ भी। मैंने सोचा; अब गंभीरता और दृढ़तापूर्वक शक्ति-संचयन और वृद्धि करनी होगी अन्यथा गणेश द्वारा निर्मित संहिताओं के रहते हुए कभी भी जब तक गीतेश्वर और उसके गण या तटस्थ सेवी मंदिर में वर्त्तमान हैं, समूलतः इस पर आधिपत्य स्थापित नहीं किया जा सकता। इसके लिए घोर तपस्या की आवश्यकता है।

जीवन में एक और बहुत बड़ा प्रयोग मैं अनेक वर्षों से कर रहा हूँ। वह प्रयोग सफल सिद्ध होने पर संभव है। विश्व मुझसे उपकृत हो।

मेरा नया प्रयोग केवल एक दो व्यक्तियों से सम्बन्ध नहीं रखता। हो सकता है कि समस्त मानवता उसे लाभान्वित हो।

आज मनुष्य इस गति से विश्व में अपनी आबादी बढ़ाता चला जा रहा है जिस गति से यंत्र उत्पादन भी नहीं कर पा रहे हैं। पिछड़े हुए देशों में उत्पादन की यह मात्रा और भी अधिक है। उत्पादन का एक यही ऐसा क्षेत्र है जिसमें अब मनुष्य और अधिक उत्पादन नहीं चाहता। लेकिन इस उत्पादन की रोक के लिए सचेष्ट होकर भी, वह इस पर नियंत्रण उसी प्रकार नहीं कर पा रहा है जैसे बाढ़ पर बने हुए देश के नये बाँध।

इसके लिए मैंने सफल प्रयोग किया है। कामेष्णा की पूर्ण-निवृत्ति इसके द्वारा बराबर हुई है। यद्यपि कुछ लोग इसे प्रकृति पर आधृत ही नहीं मानते पर मैं जानता हूँ ईसा, शुकरात आदि द्वारा प्रवर्तित सिद्धान्तों का भी तो विरोध इसी तरह किया गया था। पर इसका लाभ जब लोगों को प्रत्यक्ष मिलने लगेगा तो स्वयं सब मेरी राह चलने लगेंगे।

एक समय एक ही काम किया जा सकता है; इसलिये विश्व में विश्रुत होनेवाले अपने इस प्रयोग के सम्बन्ध में मैं उतना चिन्तित नहीं रहता जितना चिंता मुझे मन्दिर पर पूर्णाधिकार की रहती है। व्यैक्तिक प्रयोगों के साथ मित्रों की सेवा में मैं सदा लगा रहता हूँ।

सर्वसोखा के हाथ में नेतृत्व जाने के पश्चात् मैंने महत्व का जो कार्य किया उनमें से कुछ का विवरण इस प्रकार है।

धीरे धीरे मैंने ऐसे छात्र ढूढ़े और ढूढ़ता रहता हूँ जो मेरे दोनों प्रयोगों में प्रयुक्त हो सकें। उनका मैं जीवन बनाता रहता हूँ। पढ़ने-लिखने का खर्च उन्हें बराबर देता हूँ। जब वे सयाने हो जाते हैं और पूर्ण ज्ञानोपलब्धि की उपाधि उन्हें दिला देता हूँ तो ऐसे पदों पर मन्दिर में

उन्हें मिल-मिला कर प्रतिष्ठित करवाता हूँ कि वे हमारी एक चौकी सम्हालने लगते हैं। अगर उन्हें यहाँ नहीं बैठा पाता हूँ किसी कारण से; तो ऐसे किसी स्थान पर बैठाता हूँ जैसे कोई बलशाली ग्रह कुण्डली में किसी विशिष्ट स्थान को लाभ और शुभ दृष्टि से देखते हुए अपने प्रभाव से घर में बैठे हुए ग्रह को बल दे रहा हो। इस समय के सबसे बड़े हीरा आचार्य बहन्तु जो वर्त्तमान समर के सर्वश्रेष्ठ नायक हैं, गणेश के समय इसी प्रकार अँगूठी में जड़े गये थे।

पढ़ते समय वह हमारी बातों को छात्रों में, दुकानों पर और जरूरत पड़ी तो बाहर जाकर प्रसारित भी करते हैं। ये बड़े भोले होते हैं। इनमें से बहुत कम ने धोखा दिया है। हो सकता है कि प्रयोग का कुछ असर भी इसका कारण हो।

इसके अतिरिक्त ऐसे लड़कों को भी मैंने अपनाया है जो प्रयोग के के लिए कलाकार का माडल न बन सके पर पैसे के लिए वे मुहताज थे। पैसे के अभाव में उनकी पढ़ाई लिखाई रुक जाती। पर सभी ऐसों को नहीं, उनमें जो उद्दण्ड, वाचाल एवं नेतृत्व गुण से सम्पन्न हैं, उन्हीं को मैंने पाला है। पैसे के लंगर से उन्हें जमाए रहता हूँ और इतना अधिक उन्हें उनके योग्य कामों में फँसाए रहता हूँ कि उनकी स्थिति एक शराबी की हो जाती है। पैसे के मयखाने में ऐसों का इस समय मैंने मेला लगा दिया है।

मैं कामी आदमी हूँ बेकार का काम नहीं करता। यह सब जानते हैं, मैं कौन हूँ, क्या हूँ पर पहचान कोई भी नहीं पाता। मैं हूँ कुबेराधिपति विषयाचार्य। जिसे गीतेश्वर ने निकाला था पर आज यहाँ जमा हूँ अंगद की पाँव की तरह।



आचार्याधिचार्य सर्वसोखा

***

यद्यपि मैं मंदिर में घड़ी-घंटा बजाने एवं घटिका में ताली देने के लिए पेट पर रखा गया था तो भी अब मेरे हस्तकौशल से मंदिर की मही डोलने लगती है और दिग्गज दाँत चियारने लगते हैं। जो भी मन में आता है कहता हूँ; जिसको गरज होती है सुनता है। मेरा कोई काम होता है तो मेहतर को अपना सखा बना लेता हूँ काम निकल जाने पर भगवान का भी स्पर्श यह कह कर नहीं करता कि आत्म-दुहिता शुचिता नष्ट हो जायेगी, स्नान करना पड़ेगा।

मैं किसी से डरता नहीं, जो मेरे रास्ते पर आया अपने आप पटा क्योंकि केले का छिलका बिछवा देता हूँ। मैं स्नातकों का राजा हूँ, चुनाव की कोई भी पद्धति क्यों न अपनायी जाय, उस क्षेत्र से कोई माई का लाल मुझे आज तक पराजित नहीं कर पाया। जिसने बल-बूता अजमाने की कोशिश की उसको ऐसा जूता मारा कि त्रिलोक्य में वह पदासीन ही नहीं हो सका।

मैं केवल एक ही गुरुदक्षिणा बटुकों से लेता हूँ, वह है अनुसूचित स्नातकत्व की शक्ति का जीवन-भर के लिए दान। इस कार्य के सुचारु संचालन के लिए पदमोह ने मुझे पदाभिलाषी, न्यायाधीश, चिकित्सक, न्यायवादी और बागड़बिल्ला अंध स्वामी-भक्त दिए हैं। ये मेरे संकेत पर उसी प्रकार नाचते हैं जैसे परेते पर पतंग। जितना कहता हूँ, उतना ही बकते हैं, जो सुनाता हूँ उतना ही सुनते हैं, जितना आदेश देता हूं उतना ही करते हैं। इसलिए जो मैं चाहता हूँ इनके सुनने, कहने और करने से वही परिणाम निकलता है।

स्वार्थ और सिद्धि

मैं सड़क पर रहता हूँ। किसी के घर नहीं जाता। जिसका चाहता हूं रास्ता रोक लेता हूँ, जो कहना होता है डंक की मार कह सुन देता हूँ।

दुनिया स्वार्थी है; इसलिए मैं सबसे अपना काम निकालता हूँ। उसके बाद अपने रिश्तेदारों का, फिर सहगोतियों का, फिर गाँव-गिराँव के लोगों का। बाहरियों की कभी नहीं सुनता, केवल आशीर्वाद उन्हें देकर मामला पटा लेता हूँ।

यद्यपि मैं केवल एक ही भाषा खरउर्दा जानता हूँ पर उसके अक्षर मेरी मंत्र शक्ति एवं अतीत वर्त्तमान और भविष्य के ज्ञान-ध्यान के कारण सभी भाषाओं और बोलियों का तरजुमा उसी प्रकार सुनाते जाते हैं जैसे संयुक्त राष्ट्रसंघ के विभिन्न भाषा-भाषी प्रतिनिधि अपनी भाषा में वक्ता की बातें। होड़ा, कौमुदी आदि तो नहीं; मंदिर की संहिताएँ बिना विराम के मेरी रटी हुई है। यह साधारण कार्य नहीं है।

मेरे दोही शिष्य हैं जैसे बुद्ध को थे, वे जाति और गोत्र के नहीं हैं। एक गुदड़लाल है और दूसरा अगिया–बैताल। पहला इतना गुणवान है कि गुदड़ से सोना बनाना जानता है और दूसरा पानी में भी आग लगाता रहता है। दोनों दिन-रात तेली के बैल की भाँति सौंपे गए काम में पिले रहते हैं।

एक बात भूल ही गया। वह यह कि मुझे अकाल कोई मार नहीं सकता क्योंकि किसी का छुआ इसलिए नहीं खाता हूँ ताकि माहुर कोई न दे सके। कोई मुझे युद्धभूमि पर बंदी भी नहीं बना सकता, क्योंकि उस समय मैं उच्चाटन–मारण–मंत्र दरवाजा बंद करके बिमारी के बहाने जपता रहता हूँ। मुझपर लांछन कोई लगा नहीं सकता क्योंकि मैं न तो पितरदास की पाठशाला में पढ़े हूँ और न विषयाचार्य कुबेराधिपति की। ये सब के सब मेरे सामने बच्चे हैं; इसलिए प्रायः कच्चे काम कर जाते हैं।

यह तो हुई समझदारों के लिए सिद्धान्त की बातें अब कम पढ़े लिखे अपढ़ों के लिए गाथा में कुछ कह देता हूँ :—

गणेश की जबर जंगई या मूर्खता जो कुछ कही जाय, मुझसे भिड़ गया। फिर ऐसा भिड़ाया जैसे पूरे पाँव से कुपित साढ़े साती; छट्टी का दूध याद करा दिया और अब पूँछ डुलाते हुए शरणागत हैं, जो कहता हूँ, वही करते हैं, जोश खरोश से।

उनकी हिम्मत तो जरा देखो, मैंने उनको तिकड़म से कुलपति बनाया और जब मेरी बारी आयी तो मेरी ही बिल्ली मुझसे म्याँऊँ करने लगी। जब उसे ज्ञान–पाठ दिया तो जमीन नाखून से खोदने लगी। जल जाने-वाले कागज पर लिखे काले नियमों से मेरा रास्ता रोकने लगी। इतना ही नहीं मेरे पुत्र के साथ भी द्रोह कर दिया। मित्र और सुत द्रोही को भला मैं बरदास्त करनेवाला। मैं तो उन लोगों में हूँ जिसने सोते समय म्याँऊँ करने के अपराध में बिल्ले तक को मार डाला था। मेरी आवाज मात्र सुनकर घर में चूहे बिल से निकलते तक नहीं। और गणेश यदि मुझे पहचान गया होता तो शायद ऐसा नहीं करता।

उसको यहाँ से च्युत किया; इसमें मेरी बुद्धि सबसे अधिक काम आयी। उसके विपक्ष में अनाप-सनाप पचीसों पत्र लड़कियों के स्वयं हस्ताक्षर बनवा कर जो भेजवाया बच्चू को नानी याद आ गयीं। इस मामले में बदनाम तो पहले से ही था, अलबत्ता पुत गया।

लड़कों के भीतर से एक टोली ऐसी जगायी जो ये जहां जाते बाहरी लोगों के सामने बोलने को खड़े होते भों-भों ऐसा करवाते कि बाहरी आदमी यह सोचने लगता कि इसको कोई चाहता ही नहीं। लेकिन गणेश मामूली नहीं पल्ले सिरे का बेहया था। वह जो लड़कों में घुस-

पैठ कर अपनी गुंडई दिखाने लगा तो बाहर के लोगों ने यह समझा पुराना लफंगा है। पद प्राप्त करने से भी स्वभाव नहीं गया। इतना ही नहीं जिस मेरे लड़के को वे अयोग्य घोषित कर चुके थे उसे मैंने चुनवा कर संचालक मण्डल में बैठा दिया जो इनने योग्यता की धज्जियाँ ऐसे उड़ाने लगा जैसे रुई धुनी जा रही हो; धाँय-धाँय, धक-धक। पनाह मान गए, अयोग्य की योग्यता देख कर।

कपिल मुनि जो महर्षि की जीवनी लिखनेवाले थे; उसे भी रोकवा दिया; क्योंकि इस कपूत का नाम जो उसमें आ जाता।

गणेश को यहीं नहीं छोड़ा। वह सोचा यहाँ डुग्गी बजी तो चलूँ जनता को ढालूँ; वह जन्मजात तेलिकट मण्डली का आदमी मैंने आव-देखा न ताव महन्थ मण्डल से खड़ा हो गया। सेठ-साहूकारों से उस काम के लिए संयासी शिरोमणि ने मुझे दस सहस्त्र मुद्राएँ भी दिलायीं। इस मुद्रा से मैंने एक जमीन खरीद ली और कन्या की शादी भी कर ली। यदि मैं गणेश से वहाँ न भिड़ता तो विजय का सेहरा उसके सिरपर लटकता। मैं हारकर भी जीता और बेचारा भाग्य का मारा कहीं का नहीं रहा।

इसके बाद लतमरुवा पहलवान की भाँति कनछेदवापुर से वह खड़ा हो गया। वहाँ जड़न्तु, बहन्तु के माध्यम से उसे देखते-देखते ऐसा पछड़वाया कि पटकनिया खाते-खाते उसकी कमर टूट गयी और तब जाकर उसका पिण्ड छोड़ा जब उसने नौकरी कर ली; हमारे क्षेत्र के बाहर।

अभी अधिक समय नहीं बीता; वह मेरे द्वार पर आया था। क्षमा ही उसने नहीं माँगी, पश्चाताप करते-करते रोने लगा, तब कहीं जाकर मैंने आशीर्वाद दिया और तब कहीं जाकर जनता-परिषद के लिए वह

चुना जा सका और अभी-अभी पालतू मैना की भांति जनता-परिषद में हमारी वकालत करके लौटा है।

गणेश तो गया उसके स्थान पर मंदिर में जनेश्वर बैठा दिया गया। नियम गणेश ने बनवाये, आ धमके श्रीमान् जी।

जनेश्वर को देश का बच्चा-बच्चा जानता था; लोग कहते हैं बड़ा भारी विद्वान् और त्यागी भी था, कई मंदिरों का भाग्य-विधाता भी रह चुका था। था तो यद्यपि सिकिया पहलवान की तरह लेकिन चरित्र से उसका चेहरा दिया की भांति बरता था। न तो किसी नशे का सेवन वह करता था, न कभी किसी मामले के चक्कर में पड़ा। इतना ही नहीं, उसके विचारों का हर एक विरोधी भी उसके चरित्र को हिमालय से भो ऊँचा मानता था।

बिना उसको बदनाम किए उसे निकालना बड़ा मुश्किल था। यद्यपि राजनीतिक विचारों में वह शासक-दल का कट्टर विरोधी था तो भी कोई शासक उसके खिलाफ में सुनने की कल्पना तक नहीं कर सकता था। उसे लोग अजातशत्रु मानते थे।

बहुत बड़ी समस्या उसने खड़ी कर दी। चालीस वर्ष से वह जनता के बीच रहा; सदा उसने गद्दियां ठुकरायीं थीं इसलिए उसे गद्दी का मोही भी कोई मानने को तैयार न था।

उसने आते ही एक बहुत बड़ी बात कर दी। वेतन में से केवल उतना ही लेता जितने से उसका खर्च चल जाता; शेष गरीब लड़कों में बाँट देता। लड़के इतने उसके भक्त हो गए कि मेरे गणों की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि उसके खिलाफ चूँ तक कर सकें।

इसी बीच एक रास्ता निकाल लिया। वह एक दल का नेता था। उस दल का एक पुराना खूसट महर्षि के समय से ही यहां जमा था; जो

सदा हमारे कामों का विरोधी था। मैंने धूमधड़ाके से यह प्रचारित करा दिया कि जनेश्वर उसे अपना सहायक बनाना चाहता है। धीरे-धीरे बात फैल गयी, लोगों का विश्वास भी जम गया पर राजनीति का वह ऐसा खिलाड़ी कि हमारे सबसे बड़े शत्रु गीतेश्वर भक्त पेशवाचार्य को अपना सहायक नियुक्त कर दिया। सारा गुड़ गोबर हो गया।

फिर दूसरी बात उठायी। लोगों को अपने दल में पारित करने के लिए पैसा बाँटता है; मंदिर के नाम पर घूमता है, अपने दल के लोगों को भृत्यों में रख रहा है। कपिल मुनि उसके यहां मेरे गुप्तचर थे; उन्होंने कहा "म्हारो सब पुरुषारथ थाको। कोई कमजोरी हो तब तो बताऊँ ?"

अन्ततोगत्वा जप-तप आरम्भ किया। कुछ समय के उपरान्त समाचार पत्रों में ऐसा समाचार आने लगा कि जनेश्वर के दो पटु लोकायन-शिष्य लोहा और सोना भिड़ गए हैं कि दल पर किसकी बात चलेगी। प्रश्न था, लोहा चलेगा या सोना।

लोहा और सोना उस क्षेत्र में जनेश्वर की दो आँखें थीं। वे दोनों भी नहीं जानते थे कि जनेश्वर किसको अधिक प्यार करता है। लोहा लंठ स्वभाव का था, सोना गम्भीर, ज्ञानी।

इससे फायदा उठने की बात सोची गयी। धीरे-धीरे बाहरी पैमानों से यह बात लोहा के निकटस्थ संगियों के कानों को पिलायी गयी कि सोना को जनेश्वर अधिक मानता है और तुमको कम। लोहा को धीरे-धीरे ऐसा अनुभव होने लगा कि बात ठीक ही है। जनेश्वर उसको लेने स्टेशन तक जा सकते हैं, वह जो कहता है दल की वही नीति बना देते हैं और मेरी बातों को अनसुनी कर टाल देते हैं।

हमने लोहा से हाथ मिलाया। सोना और लोहा लड़ पड़े। जनेश्वर

का झुकाव सोने की ओर हुआ। लोहा की दुरभि-संधि से इसकी लोक-सेवी और ज्ञान-सेवी दोनों मायाओं के नाश का मण्डल ने मेरी अनुमति और जिम्मेदारी पर बीड़ा उठाया। मण्डल ज्ञान-सेवी रूप की होली जलायेगा और लोहा लोकायन पक्ष को रोकेगा। भय तो बहुत था पर भय से जो डर कर कदम नहीं उठाते वे मेवा भी तो नहीं खा सकते। लोहा ने कहा इधर हम, मण्डल ने कहा इधर हम।

लोहा अपने काम में लग गया, मण्डल अपने। मण्डल ने सबसे पहले अपना काम आरम्भ किया। ढूढ़-ढाढ़ कर कुछ घोल बनाया; जनेश्वर मन्दिर का काम अस्वस्थ रहने के कारण नहीं कर पाते हैं, इससे मन्दिर की प्रगति अवरुद्ध हो गयी है तथा वे पार्टीबाजी भी करते हैं और अपने दल का विस्तार और प्रस्तार मन्दिर में करने के लिए वे जितने आतुर हैं, उतने मन्दिर के ज्ञान के दीपक में स्नेह-दान करने के लिए नहीं। प्रस्ताव रखवा दिया; मन्दिर-संचालन सलाहकार समिति में कि उन्हें सलाहकारों का विश्वास प्राप्त नहीं है।

सलाहकार समिति की बैठक हुई। मुझे विश्वास हुआ कि हार जाऊँगा क्योंकि खुले आम अपने मण्डल के अनेक प्रभावशाली लोगों को भी उसके खिलाफ मत देने की हिम्मत नहीं थी। सब लड़के हमारे खिलाफ होकर परिषद्-भवन के बाहर गुर्रा रहे थे। प्रस्ताव पर विचार हुआ तो मैंने प्रस्ताव वापस ले लेने की प्रार्थना प्रस्तावक से की; उन्होंने वापस ले लिया। उस दिन जिस बुद्धिमानी से मैंने मण्डल की प्रतिष्ठा बचायी अगर कोई असली राजा जान जायँ तो मुझे राज मंत्री बना लें।

भले आदमी को एक बात और भले घोड़े को एक चाबुक लग जाता है तो वे अपने वश में नहीं रह जाते। जनेश्वर को भी उस दिन आघात लगा और वे हवा का रुख समझ गए।

बिमारी का बहाना बना, यहाँ से इतने बड़े नेता और ज्ञानी भागे कि फिर मर तक गए इस मंदिर में आने का नाम भी नहीं लिया। जाते जयाते भी एक गैलन तेल इस मंदिर का ले गए; मोटर गाड़ी पर चढ़े सो अलग से।

इसके बाद खोज-खाज के एक बड़ा विचित्र आदमी यहाँ कुलपति के रूप में भेजा गया। इतना मालदार था; जैसे बड़ा राजा, विद्वान भी विख्यात था। इतना बड़ा कामनिष्टों का विरोधी था कि हजारों को गोली से भुनवा दिया। बड़े-बड़े आचार्यों को भी खड़ा कराकर बात करता था। सरकारी मंत्रियों को तो अपने ठेंगे पर गिनता था। किसी को यहाँ उसने मुँह ही नहीं लगाया। इतना उसका रुआब था कि लोग थर थर उससे काँपते थे।

जब गीलेश्वर जगदीश, गणेश और जनेश्वर को यहाँ से निकाल बाहर किया तो यह मरदुआ क्या पंजा मिलाता। यह लोगों से मिलता-जुलता नहीं था; इसका लाभ बड़ी सरलता पूर्वक उठाया जा सकता था।

यह सोचकर; आते ही कि मंदिर में जरा कुछ अपना करिश्मा दिखाएँ, कुछ जोड़े घटायें ताकि मेरे राजसी प्रभाव के चकाचौंध में लोग आ जायँ; पेशवाचार्य के स्थान पर एक सत्तर वर्ष के जुलजुल ई ट जोड़वा को यह अपना सहायक बना कर रख लिया।

कुलपति कामेश्वर के समय हमारी स्थिति थोड़ी कमजोर इस अर्थ में थी कि अगर उसके शरणागत चले जाय तो कुछ पदोंपर स्थापित्व गैरे आदमियों को मिल जाय। जड़न्तु और बहन्तु अभी तक पूर्ण रूप से स्थायी नहीं हुए थे। ऐसी स्थिति में यही उचित था कि बहन्तु और जड़न्तु को क्षेत्र सौंप दिया जाय ताकि मिल-मिलाकर कुश्ती मार दें फिर इनको मैं रास्ता बताऊँ? हाँ प्रचार का कार्य मैंने अपने जिम्मे ले लिया।

एक ओर अहन्तु कामेश्वर का अभिनन्दन वंदन करने लगा; दूसरी ओर लोगों के कानों में विचित्र-विचित्र सच्ची-झूठी बातें सत्य की तरह मैंने प्रचारित करना आरम्भ किया। उनमें से कुछ की बानगी यहाँ दी जा रही है—

यह बहुत बड़ा देशद्रोही है। यह फिरंगियों का जीवन भर पिट्ठू रहा। जब वे देश छोड़कर जाने लगे तो यह भी रजाकारों की तरह स्वतंत्र राज्य स्थापित करवाना चाहता था। जब इसने देखा कि देश का गृह-मंत्री चढ़ाई करवा देगा; तो पाकिस्तान अमेरिका और इंगलैण्ड से इसने सहायता माँगी। सर्वत्र से टांय-टांय फिस हो जाने पर देश छोड़कर अरबों रुपये यहाँ से गोल करके विदेश भागा और जब तक देश का वह गृह मन्त्री जीवित रहा; इसने भारत-भूमि पर पैर तक नहीं रखा।

दूसरी बातें बड़ी रसदार थीं। इसकी खूबसूरत नाक इसकी अपनी नहीं है। एकबार एक महारानी से इसका प्रेम हो गया। महारानी का पुत्र नाबालिग था; यह पूरा राजा बन बैठा था। जब वह बालिग हुआ तो भला वह कैसे देख सकता था, राजपुत्र जो था। खींचकर ऐसा छुरा मारा कि नाक ही इसकी कट गयी फिर जर्मनी में जाकर इसने प्लास्टिक की नाक लगवायी। इसीलिए इतनी सुन्दर है।

शराब बोतल की बोतल घटाघट पी जाता है; कलिया-कबाब भी खाता है। महर्षि—मन्दिर में वह इतना ही नहीं कर रहा है अपने बगल में एक पट्ठा चुनमुन चुरैया भी पाल रखा है। उसको भी सिद्ध कर यहाँ अघोड़ पन्थ चलाना चाहता है।

हमारी भाषा और संस्कृति का इतना विरोधी है कि उसकी होली जला देना चाहता है। इसलिए इसने अपने कुलगोत के लोगों को यहाँ बढ़ावा देना शुरू कर दिया है। अगर यहाँ यही कुछ दिनों और रहा तो मंदिर

में हमारे भाषाभाषी और क्षेत्र के एक व्यक्ति भी नजर नहीं आयेंगे। अपने प्रदेश के काले लोगों से हमारी सोने जैसी भूमि नष्ट हो जायेगी।

उसे क्या मालूम कि वह ज्वालामुखी पर बैठा है। और एक दिन लोगों ने देखा कि बड़े बे आबारु होकर तेरे कुचे से हम निकले।

देश में तहलका मच गया। मची खोजाई होने कुलपति की। देश के सभी जाने-माने लोगों से पूछ-पाछ शुरू हुई। हमारे पौरुष की कहानी सर्वत्र व्याप्त हो गयी। कश्मीर और नहरी पानी से भी विकट समस्या मंदिर के कुलपतित्व की समस्या हो गयी।

अन्त में ढूढ़-ढाढ़ के एक सरकारी चरवाहा यहां बुलाया गया। मैंने सोचा अगर शिष्यत्व ग्रहण कर ले तो उसका उद्धार कर दिया जाय।

एक दिन चोंगा पहिन, मथबंधा बाध, साइत सुबेवत देख, पान ओन जमा; चादर-ओदर डाल उसके दरवाजे पर गया। चिट भेजवाया; उत्तर उसने दिलाया कि आफिस में मिलिए। मुझे हँसी आयी; मैं इसका उद्धार करने आया और इसे हित-मित्र की पहचान तक नहीं। भाग्य में तो भस्म होना लिखा है; उसकी बुद्धि तो मारी गयी है। ऐसा सोच-समझ कर मैं लौट आया।

एक मजेदार बात सुनिए। जनाब की हिमाकत तो देखिए। मेरे विद्यालय में प्रधानाचार्य का पद फिर रिक्त हुआ। कायदे-कानून से वह जगह मुझको मिलनी चाहिये लेकिन इस म्लेच्छ ने तिकड़म बाजी करके मेरे परम शत्रु कलमुहां को यहाँ बैठा दिया।

अब क्या; देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है। मैं चाणक्य हूँ; अगर शत्रु बध नहीं करता हूँ तो मेरा विश्रुत मार्ग नष्ट होता है।

—*—

आचार्य कपिल मुनि



संस्कृत, संस्कृति और राष्ट्रभाषा का नहीं; मैं सधुक्कड़ी का विद्वान हूँ। यह विद्वता मैंने कबीरा गाते-गाते, सुनते-सुनाते प्राप्त की है।

संसर्ग से गुण-दोष की निष्पत्ति होती है। यह मैं भलीभाँति जानता हूँ। इस मन्दिर के ही करुणा-निवास में जड़न्तु और बहन्तु के साथ मैं इस मन्दिर की वृत्ति पर पला हूँ। इस नगर में मैंने सत्यनारायण की कथा बाचकर उस समय भी पैसा पैदा किया था। व्यापारी आज का नहीं, बड़ा पुराना हूँ; जन्मजात।

मैंने इस मन्दिर से दो-दो परीक्षाएँ एक साथ पास की हैं; पर मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ पाया। जब तक अधिकारियों को ज्ञात हो मैं कामरूप कमच्छा में अपना वेष बदल कर सुन्दर बन के एक योगी के आश्रम में उसका भक्त बन कर पहुँच गया।

वह सिद्ध था, सुजान था, रस-सागर था। वह सदा सद्भाव, कल्पना और अनुभूति से गंगा-यमुना और सरस्वती का कृति-संगम बनाता चलता था। देश के लोग ही नहीं; विदेशों का पढ़ा-लिखा बच्चा-बच्चा तक उसे जानता, मानता और पूजता था। इतना सुन्दर था; जैसे सतयुग का कोई सिद्ध ऋषि।

उसके आश्रम में उसका पैर दबाने लगा, तरकारी फल-फूल तोड़ कर आश्रम में लाने लगा। उसने एक कुत्ता पाल रखा था जो सदा उसके साथ रहता था, उसी की बगल में खाली होने पर जाकर मैं बैठ जाता था।

बहुत बड़े-बड़े विद्वान उसके आश्रम पर आते थे। मैं उनकी तथा योगिराज की बातें सुनता था। यद्यपि देखने में मेरी सूरत-शक्ल रसालियों की भाँति है; पर मैं रसपायी हूँ। पहली बात तो सब लोग मेरा चेहरा देख कर समझ जाते हैं पर और बातें लोगों की समझ के बाहर हैं क्योंकि मेरा मन ही केवल उसे भाप पाता है।

योगिराज के पास बहुत सी पत्र-पत्रिकाएँ और पोथियाँ आशीर्वाद के लिए आतीं थीं। योगिराज मेरी मातृ-भाषा से अपरचित थे, यद्यपि उसे वे समझ जाते थे। धीरे-धीरे मैं पत्र पढ़कर उन्हें सुनाने लगा, पोथी-पत्रा का भी वाचन मैंने आरम्भ कर दिया। वे मेरी सेवाओं से बहुत प्रसन्न हुए और साठ रुपये मासिक पर मुझे पुस्तकालय में लोक-भाषा की पुस्तकें पढ़वाने के लिए रख लिया। फिर योगिराज से मैंने निवेदन किया कि आपके आश्रम में कला, भाषा, साहित्य, संस्कृति की बड़ी गहन शिक्षा दी जाती है। यदि एक काम हो जाता तो आश्रम का हित भी होता और मेरा लाभ भी।

मैंने उनसे प्रस्ताव किया कि आश्रम में लोक-भाषा की शिक्षा-व्यवस्था है ही नहीं। यदि प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था यहाँ कर दी जाय तो जो इसे चिट्ठी-पत्री के काम के लिए पढ़ना चाहते हैं; उनका हित होगा, जो लोक-भाषा सीखना चाहते हैं उनका भी। मैं सेवा भावना से एक घण्टे रोज पढ़ा भी दूँगा। योगिराज को बात बहुत पसन्द आयी। एक घण्टे रोज पढ़ाने भी वहाँ लगा। पुस्तकालय का काम भी देखता था, फूल-पत्ती और तरकारीवाली व्यवस्था भी सम्हाले रहा। मेरा वेतन बीस रुपये मासिक बढ़ गया।

मैं बुद्धू नहीं हूं। मैं यह जानता था कि बिना स्याही, कागज को छुए और कलम पकड़ने का सऊर न होते हुए भी यदि कबीर जगवंद्य

हो सकते हैं; योगिराज उनकी काव्य-प्रतिभा से प्रभावित हो सकते हैं तो मैं तो पढ़ा लिखा हूँ, कागज-कलम-स्याही को छूना ही नहीं, उसका उपयोग करना भी जानता हूँ तो क्यों नहीं मैं भी युगवंद्य हो सकता हूँ। संयोग से यह सब सोच ही रहा था कि योगिराज ब्रह्मलीन हो गए; मेरी स्थिति वही हो गयी; जो राड़ की। मेरे समस्त मनोरथों पर पानी फिर गया।

मैंने फलित ज्योतिष का आधिकारिक ज्ञान प्राप्त किया है। मैंने कुंडली निकाली; दिन भर उसे देखता रहा और तब कहीं जाकर मुझे संतोष हुआ। कुलपति गीतेश्वर के समय इस मन्दिर में एक साधारण अध्यापक के पद के लिए मैंने प्रार्थना पत्र दिया पर इसलिए उसे पढ़ा तक नहीं गया कि मेरे पास कोई उपाधि ही नहीं थी। फिर जगदीश से मैंने सम्पर्क स्थापित किया। उनकी ही नहीं, उनके पिता, पितामह की विरुदावली गाने लगा। वे पसीजे। दुर्भाग्य से उनका स्थान्तरण महर्षि-मन्दिर में हो गया। उन्होंने यहां इस बात का प्रयत्न किया कि किसी तरह इसे यहाँ खपा दूँ; किन्तु यहाँ एक से एक अगड़धत्त बैठे थे इसलिए घुस-पैठ बेकार गयी। पर एक काम मैंने किया कि उनके विरोधियों को मैंने अपना घोर मित्र बनालिया। वे मेरे यहाँ स्थायी दलाल उस समय बन गये थे और अब भी हैं जो गोटी बैठाने की चाल में मुहरे चलने लगे।

लेकिन मैं सोचा करता; मेरे मार्ग में सबसे बड़ा काँटा उपाधि है। यह व्याधि अगर दूर नहीं हुई तो सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती। कुलपति जनेश्वर के हनाम से मेरा परिचय था। उसको मैंने भगवान की तरह मानना प्रारम्भ कर दिया। वह मेरा सूरमा सतगुरु निकाला। उस समय जगेश्वर अन्यत्र कुलपति थे। दल के जन-नेतृत्व को स्थायीत्व देने के लिए वे इस बात के सदा से पक्षपाती रहे कि इसका एक सांस्कृतिक एवं

साहित्यक रङ्ग-मञ्च भी होना चाहिए। उनके हजाम ने उन्हें बताया, इस कार्य के लिए सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति मैं ही हो सकता हूँ। मैंने उस क्षेत्र में प्रदर्शन करना भी आरम्भ कर दिया था। हजाम ने यह भी उन्हें समझाया कि यदि मुझे कोई काम सौंपना है तो यह आवश्यक है कि समाज में मेरा स्तर उपाधि द्वारा उठाया जाय। अन्ततोगत्वा जनेश्वर ने लोक-मञ्च के लिए मुझे फोकट में सम्मानित सर्वोत्तम उपाधि-धारी बना दिया और इसका भी प्रयत्न करने लगे कि अगर मौका मिले तो इसे यहीं अध्यापक बना दिया जाय।

इधर इस मंदिर से जगदीश चले गए थे। उनके स्थान पर गणेश धूर्त प्रशासक बन गया था। मेरे दल ने मुझे बुलावा भेजा। मैं गणेश से मिला। तय हुआ कि पुण्यश्लोक महर्षि की जीवन गाथा मुझे लिखनी होगी, उसमें गणेश की प्रशस्ति मुझे दरबारी कवि की भाँति करनी पड़ेगी और प्रतिदान में मुझे एक विश्रुत विभाग के शीर्ष पर बैठाया जायेगा।

हुआ भी वही। मैं उन सभी मित्रों का ऋणी हुआ जिन्होंने एक ऐसे व्यक्ति को जो सामान्य अध्यापक भी यहाँ नहीं हो सकता था उसे दिखते-दिखाते वहीं अत्यल्प समय में विभाग-शिरोमणि बना दिया। अपने को भी इस सफलता पर मैं कम धन्यवाद नहीं देता हूँ और अपने से भी अधिक अपनी उस पत्नी को जो वास्तव में मेरी मार्ग निर्देशिका है।

पदासीन तो हो गया पर उदासीन होने का ऐसा नाटक मैंने किया कि शीघ्र ही लोग यह समझने लगे कि मैं पदलोभी नहीं, देवता हूँ, यहाँ किसी जंजाल में फांस दिया गया हूँ।

यह नाटक चल ही रहा था कि गणेश यहां से निष्काशित हुआ। एक वादे से जान छूटी; लेकिन एक जिससे सोचा था कि जान छूट गयी है वह

फर सर पर आकर धमक गया। जनेश्वर यहां कुलपति होकर आ गया। मैंने प्रसन्नता व्यक्त की कि हम दोनो का विरल संयोग लोक-संस्कृति वाले काम को यहां इतना अधिक परिपुष्ट कर देगा जिसकी कोई सीमा ही नहीं। लोक-सेवा की उनकी कमजोरी का लाभ यदि न उठाता तो भला वे मुझे यहाँ क्या समझते ?

मैंने उनका साथ कभी नहीं दिया यद्यपि लोगों पर मैंने यह प्रभाव डाल दिया था कि मेरे जैसा उनका अनन्य भक्त दूसरा कोई नहीं है। मेरे मित्र उनके विरुद्ध युद्ध छेड़े हों और मैं जनेश्वर का साथ दूँ ; यह कैसे हो सकता था ? पर मेरी अशोक के वृक्ष में गुलर के फूल खिलानेवाली कला का सदा ऐसा ही परिमाण निकलता चला आ रहा है।

मैंने सोचा यहाँ जनेश्वर के सहारे नौका अधिक समय तक नहीं चल सकती क्योंकि मेरी नियुक्ति केवल अवैधानिक ही नहीं की गयी है, उस वर्ष मेरे लिए कोई पद भी नहीं था, न वजट में ही इसकी व्यवस्था थी। इसलिए जनेश्वर के रहते ही ; ऐसा कुछ कर दूँ ; कि इतना दृढ़ हो जाऊँ जो मुझे कोई उखाड़ न सके।

ऐसे महत्व के काम करने के लिए मैंने पवित्रता तथा स्फूर्ति की दृष्टि से मत्स्य का झोल तथा प्याज की नियमित पकौड़ी सेवन का आयोजन आरंभ किया। मछली गाँव पर अंगौछी में बझाकर मारने की आदत पड़ी थी, योगिराज के प्रदेश में उसका नियमित सेवन वर्ज्य नहीं था। प्याज से स्फूर्ति में सुरभि आती है। यद्यपि यह कार्य इस मंदिर में कर करना पड़ता है।

यदि किसी स्थान पर शासन करना है तो अंग्रेजों की भाँति उस स्थान की सम्पूर्ण सांस्कृतिक मान्यताओं को या तो घपले डाल देना

चाहिए या अवसर मिले तो अपूर्ण और पूर्ण अवसर मिले तो भ्रष्ट और पतित बना देना चाहिए और अपनी मान्यताओं को सर्व मंगलाकरण और क्षेममयी बताकर प्रतिष्ठित करा देना चाहिए।

आते-आते ही मैंने अपनी समस्त पुस्तकें, जहाँ मेरी एक पुस्तक भी नहीं पढ़ाई जाती थी, पाठ्यग्रंथ के रूप में यहाँ रखवा दिया ? आगामी त्रिवर्षीय योजना के अन्तर्गत जितनी पुस्तकें प्रकाशित हो सकती थीं उन्हें भी उसी समय पाठ्यग्रंथ के रूप में मैंने रखवा लिया। इन पुस्तकों के प्रकाशक के स्थान पर विभागीय पते से एक संस्था का नाम दे दिया ताकि लोग समझें कि यह मंदिर का कोई संस्थान है यद्यपि सत्य कुछ विलोम में ही है, स्वार्थपरक।

योजना पारित हुई। उसको कार्यान्वित करने की बेला आयी। संस्था में रुपया तो था नहीं कि लगाता और अपने पास से राजनीति में रुपया लगानेवाले को मैं जुआड़ी ही समझता हूँ और मैं जुआ खेलूँ यह नहीं हो सकता भले ही इसके लिए जुँआँ मारना पड़े।

शक्ति रहने पर ऐसी बुद्धि स्वयं अपने आप साधन लेकर शरण आती रहती है जो सर्वसिद्धिनी होती है। अभी अभी मैंने निज चेत्री दूना को एक प्रकाशक के यहाँ गोद बैठाया था।

मैंने कहा—"ये पुस्तकें पाठ्य ग्रन्थ में रखवा दी गयीं है, छपवा डालो, कुछ हजार अग्रिम दे दो। उससे यह भी कहा गया कि आचार्य धुरन्धर द्वारा रचित 'रद्दी का इतिहास' यहाँ अनिवार्य पोथी के रूप में रखवा दिया है। वे प्रसन्न तो होंगे ही। तुम्हारे स्वामी के यहाँ तुम्हारा रंग जम जायेगा ! अब वह गुदड़ी में नहीं जायेगा, इसके संस्करण होंगे। इतना ही नहीं तुम धुरन्धर की नगरी में रहते हो उनसे प्रतिदान में उनके यहाँ मेरी पुस्तकें लगवाओ।"

"आप द्वारा उद्घोषित साहित्य प्रकाशित होगा। आपको अवकाश नहीं है इसलिए किसी शिष्य से उसको पाण्डुलिपियाँ बनवा डालें। हाँ एक बात फायदे की। इन पुस्तकों का दाम आपका स्तर उठाने तथा हम दोनों के लाभ के लिए बाजार के दाम से दुगना रखवा दे रहा हूँ।"—उसने कहा।

मैंने कहा, "ठीक है।"

"एक अवांछित कार्य आपके द्वारा हो गया है। आपकी यजमान कुमुदवती द्वारा संपादित पोथी भी पाठ्यग्रन्थ में आ गयी है; यद्यपि इसका कारण यह है कि पोथी अभी तक प्रकाशित पुस्तकों में सर्वोत्तम है।

"आप इस बात से परिचित हैं कि आजकल विद्याधर नामक लड़के का प्रभाव वहाँ बढ़ गया है। वह आप की कीर्ति का कितना बड़ा विरोधी है; इसे आप जानते हैं। यदि उसे मालूम हो जायेगा तो कहेगा सिर पर कोदों दरवाकर किताब करवा लिया। इस संबंध में एक बात और कहनी है; वह यह कि मेरे भैया की इस विषय पर किताब है, उसके स्थान पर ही यह किताब रखी गयी है इसलिए कुमुदवती की प्रतिष्ठा मेरे भैया से बढ़ जायेगी। अतः इस किताब को काट कर भैया की किताब रख दीजिए।"—उसने बताया।

"ठीक कहा, यही होगा। कुमुदवती के प्रकाशक को फिट-फाट रखने के लिए विभागीय पटवारी की स्वीकृत पुस्तक, जिसको स्वयं उसने छापा है; उसके प्रकाशन में डलवा देता हूँ और उसको उसके बेचने की व्यवस्था भी सौंप देता हूं ताकि कुछ लाभ होते रहने पर बनिया बझा रहेगा।"—मैंने उत्तर दिया।

"पांच-सात हजार रायल्टी में से एडवांस भेजवा देता हूँ। एक हजार अधिक की रसीद भेज दीजिएगा।"—कहते हुए वह चला गया।

मैंने कहा—"तथास्तु।"

× × × ×

आदान-प्रदान से न केवल दुनिया चलती है अपितु प्रकृति का समस्त कार्य-व्यापार भी। मैं प्रकृति-मार्गी हूँ, विषयाचार्य की भांति गंगा की धार मोड़ने वाला नहीं।

यदि मैं किसी को अपने यहां परीक्षक बनाता हूँ तो वह मुझको अपने यहां बनायेगा ही। वह जिस छात्र को अच्छे अंक देने को कहता है उसको मै अच्छे अंक दूं तो मै जिसको अच्छा अंक देने को कहूँगा, वह भी उसको अच्छा अंक देगा ही। दोनों को इस कार्य से न केवल लक्ष्मी सिद्धि-योग की प्राप्ति होती है अपितु दास-सुख-लाभ भी होता है।

छात्र जब यह जान जाता है कि भाग्य की कुंजी मेरे हाथ में है त। जो मैं कहूँगा, वही वह करेगा। जिसको मैं चाहूँ यदि उसीको उपाधि मिले तो निश्चय ही मेरी स्थिति अपने प्रदेश में महाराजाधिराज की हो जायेगी और हुई भी।

वे मूर्ख हैं जो यह समझते है कि इससे ज्ञान की हानि हो रही है। स्त्री के चरित्र और पुरुष के भाग्य के विषय में जब देव तक नहीं जानता तो ये नर क्या जानेंगे। जिसके भाग्य में उपाधि और वैभव लिखा होगा उसी पर तो मेरी सहज कृपा होगी। यह प्रकृति का सनातन नियम है।

दूसरे मैं तो डरविन के सिद्धान्तानुसार विचार करके मूल मानवीय प्राकृतिक स्वभाव के अनुसार ऐसा मध्यमार्गीय बना हूँ जो नर है न नारी, अनुरागी है न विरक्त, भक्त है न घृणालु अपितु प,षण्ड के सहज सिद्धान्त का कायल है। कबीर ने अगर मुसलमान और हिन्दू दोनों को बुरा न कहा होता तो उनके धर्म-गद्दी की स्थापना ही न होती। इसलिए

कुछ न होते हुए भी सब कुछ यदि कोई होना चाहता है तो उसे किसी का नहीं होना चाहिए पर लोगों की आँखों में ऐसा सुर्मा लगाने का कार्य उसे जरूर करना चाहिए जिसे लगाते ही लोग अंधे हो जाँय ताकि आपकी अंगुली पकड़ना उनके लिए अनिवार्य हो जाय।

अंधा बनाने के लिए बाजीगर होना आवश्यक है। बंगाले में, जो अपने जादू के लिये युगों से प्रसिद्ध है, मैंने यह कला सिखी है।

यहां आने पर आचार्य धुरन्धर के गुणों से मैं प्रभाव गर्भित हुआ, क्योंकि जो मेरे काम आता है, उसे मैं ग्रहण कर लेता हूँ, बिना पूछे-पाछे, आगा-पीछा देखे।

उच्च शिक्षार्थी यह जानता है कि सृष्टि में सभी तत्व उपलब्ध हैं, वे अमृत हैं। उनकी रचना कोई नहीं कर सकता। उनका परस्पर घोल बना कर नये गुण-प्रभाव की निष्पत्ति कामानुकुल व्यक्ति स्वस्वार्थ के लिए कर सकता है। इस आनुसंधानिक ककहरे से मैं बहुत पहले ही परिचित था। मैंने देखा जो छाता नहीं; उसका आकाश नहीं होता। जिसका आकाश नहीं होता उसकी धरती भी नहीं होती। जिसकी धरती नहीं होती उसके पाँव जमते नहीं। जिसके पांव जमते नहीं, जमाना उसका होता नहीं।

आचार्य धुरन्धर का प्रभाव बरसाती जल की भाँति धरा को आच्छादित तो कर रहा था पर उसमें स्थिर गंभीरता मुझे नहीं दिखी यह स्थिरता तो गड्ढे में जीवन प्रवाह से ही अविरल हो सकती है। इसलिए अपने अनुभव से उनके क्रिया-कल्प विधि का मैंने नूतन प्रभावकारी मिश्रण तैयार किया।

स्वार्थांध लोग स्वार्थ निकल जाने पर बात भी नहीं पूछते लेकिन यदि स्वार्थ का पूर्णकर्त्ता हमेशा उनको अपने चंगुल में रखे तो

अंगुल अंगुल पर पाँव बढ़ाते हुए वे सदा स्वामी के स्वार्थांश को उसी प्रकार स्मरण रखते हैं जैसे उगनेवाला सूर्य पूर्व को, ड्यूटी पर जानेवाला थानेदार वर्दी और रिवाल्वर को तथा ज्योतिषी पंचाग को। इसलिए लगाम खींचे रहने वाली बात उनके कृतित्व में मेरा योग है। एक और भी जो उतना ही महत्वपूर्ण है जितना आयुर्वेद में भस्म, साधना में सिद्धि और वियाग में प्रिय की मंगलाकांक्षा।

सभी घोड़े घास खाते हैं, सभी गायें सानी खाती हैं, पर सभी कुत्ते दूध पायी नहीं होते। किसी को दूध-रोटी चाहिए, किसी को मांस और किसी को जूठन पसंद है। स्वार्थान्धियों का वर्ग अंतिम है इसलिए उनमें नाना प्रकार के होते हैं जो अलग-अलग काम के लिए उपयुक्त होते हैं। कामी सभी; पर उनका काम-नाम-धाम भिन्न-भिन्न है। इस भिन्नता में स्वार्थ की एकता तो है पर अनुसंधान और शोध की दृष्टि भेदमयी होती है। इसलिए मैंने अपने चंगुल में रहनेवाले लोगों को तीन वर्गों में बाटा है उनके स्वार्थ के अनुसार। यहाँ तक आचार्य धुरन्धर नहीं पहुँच पाये हैं। तो उन वर्गों का गुण धर्म निरख-परख लीजिए तब मेरी शोधवृत्ति का लोहा मानियेगा।

[क] कामोपाधि धर्मार्थ वर्गायतन:—

[१] मनसा, वाचा, कर्मणा सतगुरू की जीवन पर्यन्त सेवा।
[२] चरखा-तकली चलाने के लिए हगचक्र का अभ्यास।
[३] मनोरंजनार्थ चल-चित्र से गायन तक की घर भर के लिए व्यवस्था।
[४] मेरे लिए मेरे नाम पर पुस्तकें लिखना।
[५] लोगों को मुझसे भूमिका लिखवाने के लिए बाध्य करना।

[६] पुस्तकें लिख कर जगह जगह पर उसमें मेरी प्रशंसा करना तथा मेरे उद्धरण देना।

[७] विभिन्न संस्थाओं में जहां अर्थ हो जा कर मेरे गुणों की ढोल पीट कर देवता की भाँति वहां मुझे स्थापित करना और मेरी इंगति पर मत-दान करना-कराना।

[८] मेरे घर के बाल-बच्चों के लिए मुफ्त में अध्यापक का प्रबंध तथा नियंत्रण।

[ख] अर्थोपाधि वर्गायतन

[१] घर के लिए तर-तरकारी, फल-फूल की व्यवस्था।

[२] बाल-बच्चों को खिलाने-पिलाने, टहलाने की व्यवस्था।

[३] मेरे लिए सी० आई० डी० का कार्य करने की व्यवस्था।

[४] स्वरचित रचनाएँ मुझे समर्पित करने की व्यवस्था।

[५] मेरे गुण-धर्म के प्रचार, प्रसार एवं प्रतिष्ठा की व्यवस्था।

[६] मेरे विभागस्थ विद्वानों के प्रति झूठी अफवाहों तथा छात्रों में अवज्ञा-वृद्धि की व्यवस्था।

[७] शरीर मर्दन और प्रक्षालन की नियमित व्यवस्था।

[८] राग-भोग और पूजा की सामग्री सजाकर उपस्थित करने की व्यवस्था।

[ग] उपाधि वर्गायतन

[१] थैली भेंट कराना।

[२] सभापतित्व एवं उद्घाटन के लिए सुदूर प्रदेशों में व्यवस्था करना या कराना।

[३] कीर्ति-गाथा प्रकाशित करना।

[४] पुस्तकें पाठ्य-ग्रन्थ के रूप में रखवाना।

[५] अपने राज्य की सर्वोत्तम कलात्मक वस्तुएँ उपहार के रूप में ले आना।

[६] अपने प्रदेश में मेरे पट्ठुओं को पाटना।

[७] मेरी पत्नी तथा बाल-बच्चों को अपने प्रदेश के दर्शनीय स्थल अपने व्यय पर दिखाना।

[८] इस वर्ग में केवल ऐसों का ही प्रवेश हो सकता है जो अन्य राज्यों में पूर्ण प्रभावशाली हों और जो व्यक्तिगत छात्र हों।

मेरी ये अठसूत्री योजनाएँ जब से मैं आया तभी से यहां चालू हैं। इनका परिणाम आशा से भी अधिक सफल रहा है यह इसी से जाना जा सकता है कि गत वर्ष वेतन के अतिरिक्त निःखर्च मेरी आय २३ हजार रुपये नेट की रही है जब कि मेरा खर्च २३०० रुपया मात्र हुआ। यह खर्च और भी कम होता यदि एकाध शादी मेरे घर पर न पड़ी होती।

आज कोई भी ज्ञान-पीठ नहीं है जहां से मैं पैसा न दुहता होऊँ, साक्षात या परोक्ष। विषय से संबद्ध कोई कहीं भी महत्वपूर्ण कुमति ऐसी नहीं है जिसमें मेरी वार्ता न हो।

विद्याधर के कारण संस्थाओं में चैन की नींद नहीं आ रही है पर अभी तक वह केवल एक स्थान से ही निष्काशित कर पाया है। इस क्षेत्र में मैंने उसे कई बार पटाने का बीड़ा उठाया पर न जाने क्यों वह कन्धे पर हाथ ही नहीं रखने देता और न कभी मेरे चक्र में ही फँसता है। वह निरन्तर इस क्षेत्र में मेरे दावों को पेंच से काटता चला जा रहा है और मेरे शिष्य भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाते।

जो कुछ भी हो। एक बात बताकर जो मेरे जीवन का सबसे बड़ा रहस्य है तभी समाप्त करना उचित होगा क्योंकि अभी तो जीवन बहुत बाकी है। सारे रहस्य बताना भी तो ठीक नहीं?

जड़न्तु बहन्तु के साथ इसलिए मैं हूँ कि उनके दल में शक्ति तो है पर प्रभाव का एक भी ऐसा आदमी नहीं है जिसे गणेश की नियमावली रहते कुलपतित्व का सौभाग्य प्राप्त हो सके। उत्तर-दक्खिन, पूरब-पश्चिम, सभी ओर लोग मुझे जानते और मानते हैं, क्योंकि सत्यनारायण की कथा से लेकर सभापतित्व द्वारा मैंने अपना विस्तार किया है।

जड़न्तु मूर्ख है, बहन्तु यद्यपि नाटक में मुझसे बड़ा है पर ढोलकिया मात्र है, बजनिया नहीं। कुबरोधिपति कभी राजा बनने वाला नहीं; राजा बनानेवाला मात्र है; सर्वसोणा तो केवल दक्षिणा बटोरनेवाला है। मैं यह सब कुछ साथ-साथ होते हुए उसी प्रकार कुछ नहीं हूँ जिस प्रकार कविवर बेधड़क की मुझे आलंबन मान कर लिखी गयी यह कविता :—

"मैं आलू और चुकन्दर, दोनों साथ साथ।
मैं सुन्दर और असुन्दर, दोनों साथ साथ॥"

इसलिए इनके साथ हूँ कि जरूरत पड़ने पर राज-तिलक के लिए व्यक्ति न ढूढ़ना पड़े और यदि इस बात की जरूरत ही पड़ जाय कि गद्दी मिल ही जायेगी तो विभीषण को अवतार न लेना पड़े, इसका भी सदा मैं ध्यान और ज्ञान रखता हूँ। लोग मुझे खर समझते हैं पर मैं खर की खाल में सियार हूँ।

इसलिए आज मेरी समस्त सेना जड़न्तु और बहन्तु का आदेश पालन कर रही है और मैं समय के झरोखे से भविष्य श्री की सम्मान का ज्ञानार्जन कर रहा हूँ और राजधानी में पत्र दूत द्वारा वियोगिनी के आँसू से संलिप्त स्वार्थ का सन्देशा भेजवा रहा हूँ। अभी तक पराभूत नहीं हुआ हूं, जिस सीढ़ी से चढ़ता हूँ, उसे तोड़ता गया हूँ और आगे भी ऐसा ही होगा क्योंकि मैं कपिल मुनि हूँ।

आचार्य बहन्तु



ऋतुओं में जो स्थान बरसात का है; बरसात में जो स्थान चेरापूँजी का है; चेरापूँजी में जो स्थान चाय का है; चाय में जो स्थान दूध का है और दूध में जो स्थान चीनी का है, वही स्थान यहाँ मेरा है।

मैं उसी की भाँति सर्वत्र व्याप्त हूँ; शर्त केवल यह है कि मैं वहीं जाता हूं जहाँ मोदक द्वारा पेट-मंगल आयोजन की गंध पाता हूँ। यह गंध दक्षिणामयी होनी चाहिए। मैं ऐसों में नहीं जिनकी भनक भी लग जाय क्योंकि 'सरक्यूलेटिंग' के स्थान पर 'फिक्स्ड्' कैपिटल पर छापा मारना मैं अधिक उचित समझता हूँ। उससे अनेकानेक बार तृप्ति मिलती है।

मैं घास की तरह यहाँ उपजा और आज ताड़ की भाँति यहाँ बढ़ गया हूँ; यह बीज का नहीं द्विवर-पूजन-पद्धति का प्रभाव है। यह पूजन-पद्धति प्रकृति और मनुष्य स्वभाव के समन्वयवादिनी-तत्वबोधिनी प्रतिभा-मंथन की लक्ष्मी है। फल मेरा है क्योंकि आत्मज है, पत्ते और फूल अधिष्ठात्री देवी के; रस उनका है जो छक कर पीने के लिए दीवाने हैं। इसे मैं उतारता हूँ, बूँद बूँद पिलाने के लिए, घूँट-घूँट देकर घाटा उठाने के लिए नहीं।

ऐसे तो मेरा चेहरा 'गाँव की गोरी' के हीरो की तरह है, पर मैं सदा ऐसा मेकअप किए रहता हूँ, जैसे 'अनारकली' का 'सलीम'; अन्तर केवल इतना है कि मैंने उसके मुगालिया रूप को प्रयत्न-रत्न के सहारे आधुनिक बना दिया है। पुराण में नवीन का यह समन्वय मैंने किया है।

यह कला मैंने इस प्रकार सीखी कि गाँव की रामलीला में मैं तीन साल तक लगातार सूपनखा बना था। पहले साल तो लोग मुझे पहचान गए लेकिन उसके बाद कोई भी कभी भी नहीं पहचान पाया।

मैं नौटंकी, भांड़, विदेशिया से लेकर पं० लक्ष्मीनारायण मिश्र तक के पात्रों का अभिनय जीवन के रंग मंच पर सफलता पूर्वक करता रहा हूँ। इस विशेषता का कारण है, चश्मा। जिस तरह थ्रीडाइमेन्शन चित्र के लिए चश्मा अनिवार्य है, उसी प्रकार बात का ऐसा चश्मा द्रष्टा की चाहों पर लगा देता हूँ कि वह समझने लगता है, पतिव्रता स्त्री की भाँति मेरे विचार सर्वथा उसके हैं; पर मैं किसी का नहीं? वे ही मेरे जाल में अटकते हैं, ऐसे जैसे जाल में फँसी मछली और पिंजड़े में बझा कीर।

घर-द्वार छोड़कर मैं यहाँ किसी वृत्तिवाली संस्कृत की पाठशाला में लघु सिद्धान्त कौमुदी पढ़ने आया था। बड़े भाई से कोई सरेल मिल गए और उन्होंने करुणा-निवास में मामला पटा दिया। यद्यपि शास्त्र की ओर जाने का विचार था तो भी आचार्य तिकड़म उन दिनों यहाँ अधिकारियों के औरस पुत्र हो रहे थे। उनकी करुणा-कृपा के परिणाम स्वरूप मैंने इधर दृष्टि-निपात किया।

जीवन की वास्तविकता यह है कि यहीं की वृत्ति पर उपाधि की कृति मिली। उपाधिधारी होते ही सेठ सतपत्नी भाई नवरंगियाँ के धार्मिक प्रवचन और वक्तव्य लिखने लगा। प्रारम्भ में वहाँ जमा इतना कि कुछ बाकी न रहा। उनकी पत्नी को मैंने एक दिन भाभी जी कह दिया और सेठजी को उसी दिन व्यवसाय के कार्यों में सलाह दे बैठा।

सच्चा व्यावसायिक सामान्य चाकरों को कभी अपने अन्तःपुरी-व्यापार का चक्र-चालक नहीं बना सकता और न कभी वह उसे नाराज कर बिदा ही कर सकता; यह मुझे उस समय मालूम न था।

एक सप्ताह भी उस घटना को व्यतीत हुए न हुए होंगे कि सेठ जी ने एक दिन कहा;

"भाई, तू बहुत बड़ा विद्यावान है; हमारे खातिर नाहीं; किसी बड़ा विद्यालय के लिए ईश्वर ने तेरे को बना कर भेजा है। पूज्य महर्षि से तेरी सिफारिश कर दी है। शुरू में तीन साल तक चालीस रुपये माहवारी की तेरे लिए बिउस्था भी कर दी है। आगे तेरा भाग जाने। परसों ब्रह्म बेला में पूज्य महर्षि जी से मिल लें। हमको जब तेरी जरूरत पड़ेगी तो बुला लूँगा।"

आचार्य सर्वसोखा के यहाँ; मैं संस्तुति पत्र जो सेठ नवरंगिया ने दिया था; लेकर पहुँचा।

उन्होंने बातचीतोपरान्त भक्त गुदड़ लाल को बुलाया और कहा रद्दी की सफाई के लिए जब कल महर्षि के पास जाना तो उनसे बहन्तु के बारे में ऐसी तारीफ करना जैसी तारीफ तुमने मेरी की थी; क्योंकि बिलाया रहा यह बटु अटकन पाकर जीवन भर मण्डल का पाँव पखारेगा और मेरे चरणों का चरणामृत लेगा।

महर्षि ने सेठ नवरंगिया की संस्तुति पर अपने मंदिर में रख लिया। तीन साल तक तो सेठ देगा; उसके बाद क्या होगा; इसकी चिन्ता मुझे उसी प्रकार सताने लगी जैसे पुलिस को आन्दोलनकारियों की। इस लिए मैंने यह आवश्यक समझा कि यहाँ जमने की त्रिवर्षीय योजना बनानी चाहिए। योजना की यह प्रेरणा मुझे पितरदास जी से मिली क्योंकि वे योजनाबद्ध विकास के लिए सरदर कायल थे।

मेरी योजना त्रिसूत्री थी। उसका "मेमोरंडम" और "आर्टिकिल

आफ् एशोसियेशन अर्थात उद्देश्य और नियमावली निम्न-लिखित थी :—

[१] स्थायी वेतन भोगी पूर्ण वेतन पर होना है तथा वेतन भोगी उच्च पदस्थ अधिकारी दस वर्ष में बनना ताकि द्रव्य और अधिकार की सनातन उपलब्धि हो।

[२] बन्धु-बान्धवों की संम्पुष्टि।

[३] एक साथ ही आर्य समाजी-सनातनी, हिन्दी और अंग्रेजी भक्ति के द्वारा राजनैतिक यथा जन संघ, कांग्रेस, सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट प्रजा सोशलिस्ट सबका होकर किसी का न बन लोक यशः ज्ञान और साहित्य दोनों में से किसी न हो सबका बन कामनिवृत्तिअर्थ धन यश की उपलब्धि।

[१] पद प्राप्ति के निमित्त

जिस विभाग में मैं पढ़ैता नियुक्त किया गया उस विभाग में लोक विश्रुत विद्वान आचार्य विद्यांतकर थे। उनका पैर दबाना चाहता था, उन्हें मालिश और सम्पू कर उनका आशीर्वाद प्राप्त करना चाहता था पर वह अत्यन्त बागड़ बिल्ला थे। पठन-पाठन, स्वाध्याय, चिन्तन और मनन मात्र ही उसके ध्यान में स्थान बना सकते थे अन्य कुछ भी नहीं। लाचार हो उनके निर्देशन में अनुसंधान के लिए उसका पाँव पकड़ लिया। निर्देशन की चाल दोहरी थी। निकट ही में एक और महाविद्यालय खुला था जो मूर्तिपूजा विरोधी धर्मावलंबियों द्वारा चालित था। उनके संस्थापकाचार्य मेरी प्रतिभा के कायल थे। उनकी सेवा-निवृत्ति तीन वर्ष के भीतर ही होने वाली थी। वहाँ आचार्य के पद पर वही प्रतिष्ठित हो सकता था जो मूर्तिपूजा विरोधी धर्मावलंबी हो।

स्वार्थ और सिद्धि

यद्यपि मैंने धर्म तज दिया तो भी धैर्य मित्रों के कारण वहाँ टूट गया और मुझसे अधिक योग्य वहाँ प्रमाणित हुआ; एक सामान्य अयोग्य व्यक्ति। उसका गुण था हरस्थिति और परिस्थिति में स्वार्थ की सिद्धि।

इस मात के पश्चात् मैंने उस विजेता के गुण-धर्म अंगीकार किए। प्रतिस्पर्धी भी गुरु होता है, यह ज्ञान मेरा अनुसंधान है। अब केवल एक ही रास्ता था, वह यह कि किसी भी भाँति यहीं सिमट कर फैलूँ ?

विज्ञान में श्रम-विभाजन का महत्व उतना ही है; जितना बेबोलोनियाँ और हरप्पा का महत्व सभ्यता के विकास-क्रम के ज्ञान में है। विशिष्टीकरण के नाम पर विभाग का बटवारा हुआ। इससे एक व्यक्ति और भी लाभान्वित हुआ जो नये विभाग का अध्यक्ष बना। मैं इसलिये प्रसन्न हुआ कि मेरे विभाग में दो ही बचे। एक अध्यक्ष; दूसरा मैं।

अध्यक्ष बड़े कठोर थे। छात्रों को कठोर वर्त्ताव पसंद नहीं। उनकी कठोरता को मैंने अस्त्र बनाया। एक दिन लोगों ने देखा अन्य मण्डलान्तरगत विभाग के छात्रों ने उन पर धावा बोल दिया। कोई इसे नहीं जान पाया कि मूल रहस्य क्या है ? मैं तो छात्रों को समझाते हुए ही लोगों को दिखाई पड़ा। सच्चा विद्वान और ईमानदार किसी की बातें बरदास्त नहीं करता। वे इससे भी अच्छे स्थान पर चले गये और मैं मुकुट का मणि अस्थायी रूप से बन गया। यह जमाना आते आते यहाँ जनेश्वर आ चुके थे। मुझे मणि के रूप में वे क्या कोई भी ज्ञानी स्वीकार करने के लिये तयार

न था। उन्होंने मुझे स्थायी रूप से पदासीन नहीं होने दिया और एक महापंडित को बुला लिया। वेतन उसका मुझसे अधिक, योग्यता उसकी अधिक, नाम धाम तो असीम। लासा-पद्धति भी फेल हो गयी पर उत्पात पद्धति कामयाब हुई; जनेश्वर को जाना पड़ा। उन्होंने एक जमींदारी का मुझे भाग्य-विधाता बना दिया, शायद मैं मान जाऊँ, इस आशा से, पर उन्हें हटाने के अलावा कोई दूसरा रास्ता ही नहीं था।

कामेश्वर आये। उनका अभिनन्दन और बन्दन आरंभ हुआ। मधुर-वाणी और लम्बे दण्डवत् ने वैसा ही लाभ दिखाया जैसा सुगर कोटेड कुनैन मलेरिया में दिखाता है। वे दरबारी आदमी थे; हमारी शक्ति के विषय में भी उन्होंने सुन रखा था। उन्होंने सोचा उत्कोच के द्वारा ही मंदिर का चक्र दलदल के बाहर निकल सकता है। मैं स्थायी हो गया। जिसे राज्य चाहिए; वह जागीर मिलने मात्र से ही संतुष्ट नहीं होता अपितु इस शक्ति का उपयोग मियाँ की जूती से मियाँ के सिर-पूजन के सिर करता है। मैं भी यही कर रहा हूँ। और इसके लिए आवश्यक है कि बन्धु बान्धवों एवं आत्मीय जनों की जो हर आग में कूदने के लिए सदा तयार रहते हैं संपुष्टि की जाय।

[२] बन्धु-बान्धवों तथा आत्मीयों की संपुष्टि के लिए

निम्नांकित तरीकों से इन सबकी संपुष्टि मैंने की है ताकि वे आर्थिक दृष्टि से संपुष्ठ ही नहीं रहें अपितु इसलिए सेवा-संघर्ष के लिए सदा तत्पर रहें कि उनका आर्थिक लगाम मेरे हाथ में सदा रहे।

[१] जनेश्वर द्वारा प्रदत्त जागीर में ऐसे लोगों की धुँआधार भरती और अत्यधिक पुरस्कार पर भरती; साथ ही वेतन से अधिक भत्ते कि व्यवस्था जिन्हें कही शरण नहीं।

[२] उनसे किसी प्रकार का वहाँ काम न लेकर उन्हें चुगुलखोरी, हरामखोरी, एवं पूर्ण वाचाल और योधा बनाने की व्यवस्था।

[३] ऐसी जागीरी की व्यवस्था-समिति का अध्यक्ष ऐसे प्रमुख लोक-नायकों को बना कर बदलते रहना जो हमारे निर्णय से बाध्य हो जागीर को बढ़ाता रहे पर हमारी समिति में कभी सक्रिय भाग न ले।

[४] जागीर पर पूर्ण नियंत्रण के लिए व्यवस्था ताकि सहगोती शक्ति में रहें और जागीर के जर से मण्डल द्वारा आयोजित क्रान्ति-आयोजन में तन-मन-धन तथा प्रभाव से भाग ले सकें?

[५] नयी जागीरों की सूदूर राज्यों में व्यवस्था और उसमें सह जातियां एवं घर के लोगों की पूर्ण संस्थापना।

[६] आज के युग में ये जागीरें स्थायी तभी हो सकती हैं यदि वे शिक्षा, संस्कृति, कला, साहित्य, नाट्य एवं संगीत से संबंद्ध है। इसलिए तत्संबंधी शैक्षणिक एवं वैचारिक संस्थाओं की स्थापना।

[७] इन संस्थाओं के लिए स्थायी अनुदान की व्यवस्था।

[८] सभी पदों पर भारे भार सहजातीय, संबंधी एवं आत्मीय जनों की प्रतिष्ठा द्वारा जन-धन और बुद्धि बल की अभिवृद्धि।

[९] इन सबका ऐसा योजना बद्ध संचालन की प्रत्येक मोर्चे पर ये चक्रव्यूह का कार्य कर सकें।

ये नव-सूत्र नवग्रह हैं जो हमारी शक्ति के संतत शुभ फल प्रदाता हैं। ये आकाश में कभी भी बुरे स्थान पर नहीं बैठ सकते। इसलिए ये अमृत हैं, मंत्र हैं।

[३] धन-यश प्राप्ति के निमित्त

अब रही समाज में व्यक्ति-प्रतिष्ठा की बात उसके लिए आज प्रियवादी और सर्वदर्शी होना आवश्यक है। इसलिए सभी राजनीनिक दलों के सदस्यता अभियान में मैं योग देता हूं। सभी धर्मों के उत्सवों में दान देता हूँ। सभी साहित्यिक एवं संस्कृति-वादों का मैं समर्थन अलग-अलन मंच पर उनकी शक्ति के अनुसार श्रद्धापूर्वक करता हूँ ? अपना मूल ध्येय केवल लाभ और शक्ति का अर्जन है। ऐसा रूप और स्वरूप बनाने से अनेक लाभ होते हैं पर हमेशा दिन रात चौबीसो घंटे अभिनय करना पड़ता; कैसा-कैसा ? इसका एक ही उदाहरण पर्याप्त होगा। हिंदुत्व के अंधवेग से झंझा के समान होनेवाली उन सभाओं का जो गांधी-हत्या-कांड के पूर्व हुई थीं मैंने सभापतित्व किया था और आज सिद्ध सर्वोदयी विचारक हूँ। ऐसे असंभव को संभव करना सरल नहीं है।

आज महायुद्ध छिड़ा है। इस-पार या उस पार की स्थिति उत्पन्न हो गयी है इसलिए मैं प्रकट हुआ हूँ अन्यथा कोई मुझे जान तक नहीं पाता की इस तूफाने-बद्तम्मीजी के चालकों में मैं भी एक प्रमुख सेनानी हूं। मेरा नाम है बहन्तु जिसे सब आचार्य मानते हैं; यद्यपि मेरी प्रत्येक पुस्तक में भाषा की प्रति पंक्ति औसतन गलती दो, प्रूफ की तीन और ट्रन अप की दो हैं। यह मेरी प्रतिभा है, शक्ति है और साधना है कि वे अपने विषय की सर्वोत्तम पुस्तकें हैं यद्यपि भाव उनके किसी को मान्य नहीं।

अंधराज भू भगत कवीश्वर

***

धृतराष्ट्र नहीं,
सूर नहीं,
अंधराज मैं,
कानों का राजा;
बजाता रहा जीवन भर
छिप छुप
द्वार बन्द कर
स्वार्थ-बिगुल का बाजा।
आँख बड़ी चीज नहीं;
ऐसा वह बीज नहीं।
जिस पर ही जिया जाये
दिन में भी तो उल्लू जीता है
रजनी में जैसे चिता है
वैसे ही मैं भी रस की
धारों में;
स्पर्श गंध पुलकन की
मस्त बयारों में
सर साधा करता
जैसे वंचक
दाँव हारने पर पीता है।

स्वार्थ और सिद्धि

कंचनाभ तन
पर मन काला
खिलता वैसे ही
जैसे चम्पक कुन्दकली पर
पीताम्बर की चोली
उस पर कृष्ण बसन छविवाला
वैभव तारक युक्त ।
उसी तरह मैं भी हूँ आफत का परकाला ।
माया में तो
आकृति कृति औ, स्वर का रुनझुन
युक्ति सरस मधुशील चाहिए
वय भी कम रसहीन नहीं हो,
पर
नर में
रूप-स्वरूप
चाहिए
केवल शक्ति
श्वेत को काला
और कृष्ण को रूपा
कला सवार बताने की;
मुर्दे को जिन्दा
जिन्दे को भूत पिशाच बनाने की ।
शील बड़ा इसमें बाधक है

इसलिए तो आँख हीन नर
पूजा जाता
दृष्टिहीन नर
पंडित परम सुजान कहाता;
निर्भय भय से मुक्त
दया के पात्र सदृश वह
जिस पर स्नेह सभी बरसाते
जैसे सावन में कारे बदरा
अपने आप
प्रेम-प्रणय-रस-रंग
धरा के कन-कन में भर जाते।
तो भी हूँ विद्वान
मैं परम, सुजान,
बिना पढ़े ही सुन कर
पाया सारा ज्ञान।
शील नहीं है,
इसलिए तो
मेरा ज्ञान-चक्र
निर्मम है
जो चलता रहता संध्या के बाद
नया नित हो
जादू सा
उन पर

स्वार्थ और सिद्धि

....

जो पढ़ लिख,
तप कर बनतें;
साधक-सिद्ध-सुजान ।
स्वार्थ सुकृत का मैं व्यापारी
सारी रात चला करता है
यहाँ ज्ञान-व्यापार
कर्म में जिसे रूप
देते निशिचर सब ।

"हंस" के आत्मकथांक के लिए यह रचना लिखी गयी थी पर इसका प्रकाशन इसलिए उस समय नहीं कराया गया ताकि लगाए जाने वाले स्वार्थ-शक्ति के रसाल की कलम में मर्मभेदी कीटाणु न लग जाय।

मैं भेद की बातें तो नहीं करता पर सूत्र कह दिया करता हूँ। ज्ञानी इसमें गोते लगा तल की गहराई का पता लगा सकते हैं।

नेता वह नहीं होता जो सड़क पर झंडा लेकर चिल्ला लगा, नारे-बाजी करता है। कवि वह नहीं होता है जो कवि सम्मेलनों में जाकर गले बाजी करता है। सूरमा या योधा वह आज के युग में नहीं हो सकता जो समर में टामीगन ले अगली पंक्ति में मार्च करता है। आज नेता वह होता है जो औरों को सूली पर चढ़वा बिना वस्त्र पर दाग लगवाये हुए ही आन्दोलन का समस्त फल उपभोग कर लेता है, कवि वह होता है जो दो चार पंक्ति इधर-उधर की जोड़ कर चकाचौंध उत्पन्न कर देता है और बिना उसकी कविताएं सुने और देखे लोग वाह-वाह कहते हैं, सेनापति वह होता है जो समर भूमि से हजारों मील दूर रह कर भी पूर्ण त रह युद्ध का संचालन कर लाखों को बलि चढ़ाता है। यह ऐसा सिद्धान्त है जिसे मैंने सत्य कर दिखा दिया है ।

स्वार्थ और सिद्धि

बलिदान करनेवाला ही नहीं, यज्ञ करानेवाला भी पुण्यभागी होता है। उसे परोक्ष जो लाभ होता है वह अपरिकल्प है किन्तु साक्षात् दक्षिणा का लाभ तो होता ही है।

मैं उपाधि यज्ञ द्वारा शक्ति का अर्जन करता हूँ; स्वार्थ के मन्त्रों द्वारा जीवन के प्रगति पथ पर अन्धकार में भी स्वर्ण की किरणें बिखेरता हूँ। जिसको चाहता हूँ, उसी को पास होने देता हूँ, जिसको चाहता हूँ, उसी को सर्वोच्च उपाधि दिलाता हूँ।

मेरा प्रभाव राष्ट्रीय ही नहीं अन्तरराष्ट्रिय है। विदेश में भी लोग मुझे जानते मानते हैं। जो मेरा शिष्यत्व ग्रहण नहीं करता विभाग में उसका प्रवेश तक वर्जित है।

यद्यपि गद्दी पर दूसरों को बैठाता हूँ पर मन्त्रित्व मैं करता हूँ। मैं निर्भय हूँ, इसलिए सब कुछ मन की आँखों से देखता हूँ। मुझे आँख है पर अन्तर की। इसलिए जो यह कहते हैं कि अधर्म से दृष्टि नष्ट होती है वे झूठे हैं। स्वार्थ संसार का सबसे बड़ा धर्म है जो इस धर्म का प्रतिपालन नहीं कर सकता उसे ही मैं दृष्टिहीन मानता हूँ।

अलंकार अनाभी

***

संसार का कोई विद्वान ऐसा नहीं हुआ जिसे मेरा नाम न लेना पड़ा हो या भविष्य में भी कोई विद्वान हो ही नहीं सकता जो मेरा नाम न ले। मैं इसके लिए अपने पिता और माता का कृतज्ञ नहीं हूँ। अपना ऐसा नामकरण मैंने स्वयं किया है। यह मेरी विद्वता का पहला प्रमाण है।

यह नाम सवार्थ-सिद्धकारी है तो भी इस सिद्धि के लिए मुझे बहुत बड़ा बलिदान करना पड़ा है। मेरी विमाता ने एकबार मुझे इस नाम से पुकारा; तो जीवन भर पिताजी ने मुझसे संभाषण नहीं किया। बहन ने इसी प्रकार पुकारा तो मेरे बहनोई ने मेरी बहन का मेरे घर आना रोक दिया। मेरी पुत्री ने जब इस नाम से मुझे स्मरण किया तो मेरे जामाता के सिर पर तब तक पसीना आता रहा जब तक उसे पूरा विश्वास नहीं हो गया कि यह अब्बा हजूर हैं ! इसलिए पुत्र बधू आने के पूर्व ही सबसे अलग ही रहता हूँ।

एकांत सेवन करता हूँ। यह कम बड़ा बलिदान नहीं है। सब कुछ हुआ पर मैंने अपना नाम कायम रखा।

मैं शुद्ध देशी विद्वान हूँ चाँदी की तरह पर उस पर मैंने निखालिस सोने का पानी उसी प्रकार चढ़ा रखा है जैसे अन्ताराष्ट्रिय कोष ने अपने पर डालर का प्रभाव।

मैंने जीवन के मध्याह्न में अपनी प्रभा से विद्या की दीप्ति का प्रसार कोमल-बुद्धिजनों पर किया पर लोगों के मन पर उसकी छाप गहरी नहीं,

अर्थान्तरमयी पड़ी। इससे मैंने हार नहीं मानी अपितु एक नयी विद्या का आविष्कार किया। जिसे लोढ़ा से पत्थर पर लिखा जाता है जिसकी फोटोप्रति से ही अध्ययन-अध्यापन संभव है।

यह प्रतिकृति विद्या संसार में केवल मैं जानता हूँ। अतः अपने विजय का स्वतः सिद्ध मैं विद्वान हूँ। यदि किसी विद्वान ने शास्त्रार्थ किया तो मैं उसे ऐसे सर कर देता हूँ जैसे दंगली वकील सच्चे, सज्जन इज्जतदार गवाह को। अनेक अजित विद्वानों को मैंने केवल अनर्गल प्रचार से पछाड़ दिया। प्रचारित कर दिया कि मेरी अमुक पाण्डुलिपि से इन्होंने पन्ने चुरा लिए। करता यह था कि देखने में दुरुस्त पर भीतर से चट्ट पाण्डुलिपि उन्हें भेज देता था और रसीद बाहक से मँगा लेता था फिर पाण्डुलिपि लेने स्वयं जाता था। उसी समय में यह प्रचारित करता कि इतने पृष्ठ इसके लापता हैं। अन्ततोगत्वा हार मानकर वह विद्वान न केवल मुझे विद्वान मान लेता था अपितु उससे जो मेरा स्वार्थ होता था वह भी सर जाता था।

मैंने अपनी यह विद्या किसी को भी नहीं बतायी है क्योंकि यह विद्या इस स्थिति की कदापि नहीं हो सकती कि औरों को समझाकर अपनी झोली खाली की जाय। इसलिए अध्यापक होते हुए भी अपना शिष्य मैंने किसी को नहीं बनाया; केवल स्वार्थ मात्र को।

मैं किसी दल में नहीं पर जहाँ युद्ध होता है वहाँ मैं उसी प्रकार रहता हूँ जैसे समरू की सेना राजों के यहाँ रहती थी। मैं युद्ध में उसी पक्ष का साथ देता हूँ जिससे स्वार्थ की अपेक्षाकृत अधिक सम्भावना होती है।

लोग इसे ब्लैक मेलिंग कह सकते हैं पर स्वार्थ के बिना प्रीति नहीं होती और न भय के बिना। इसलिए यह जीवन की सहज रीति-नीति

है। इस नीति से ही व्यक्ति जीवन का सब सुख अपने भीतर भर कर विकास कर सकता है। यह मेरे जीवन से सिद्ध है।

इस सिद्धि का भोग मैं स्वसुख के लिए कहता हूँ जिसको भी आवश्यकता हो दक्षिणा पेशगी लेकर आ जाय मैं उसकी मदद कर दूंगा। अगर कोई नहीं आता तो मैं स्वयं ऐसी स्थिति उत्पन्न करना जानता हूँ कि अपने आप एक न एक दिन मेरे जाल में पूरे एक पक्ष को पड़ना पड़ता है।

मैं अपनी स्थिति सदा ऐसी ही रखता हूँ किसी भी कारण इधर से उधर और उधर से इधर आ जाऊँ इसलिए किसी भी कारण बोली बोलकर मुझे कोई भी बुला सकता है क्योंकि मैं उसी प्रकार वहाँ उपस्थित रहता हूँ जहाँ युद्ध होता है जैसे गीध मरघट पर और आत्मा जीव में। मैं नामी सरनामी अनामी हूँ, पता बताने की आवश्यकता नहीं क्योंकि जानते मुझे सब हैं।

जढ़ाचार्य जड़न्तु

**

मेरा नाम सुनकर लोग समझते हैं कि मैं 'जड़' हूँ पर बात कुछ ऐसी नहीं है। इसके प्रमाण स्वरूप मैं अपने कुछ शुभेच्छुओं तथा शत्रुओं के पत्र प्रेषित कर रहा हूँ जो मेरे कृतित्व पर प्रकाश डालते हैं। कुछ पत्रों का मैंने हिंदी रूपान्तर भी करा दिया है। इसे बहन्तु ने किया है इसलिए मैं उनको धन्यवाद देता हूँ। इन पत्रों में से वे अंश मैंने काट दिये हैं जो घोर व्यक्तिगत हैं तथा जो अभाष्य और अलेख्य हैं।

× × ×

[१]

प्रियवर जड़न्तु;

लोग आज तक मेरा और तुम्हारा सम्बन्ध नहीं माप पाए; यह हम दोनों के लिए अच्छा ही रहा। जब मैंने तुम्हें विदेश भेजा था तो मुझे ऐसी आशा नहीं थी कि तुम इतने नीति-पटु होगे पर आज जो करिश्मा तुम दिखा रहे हो, वह काबिले तारीफ़ है।

पाँच-सात छात्रावास के लड़के तुम्हारे विरोध में पान की दुकान पर कुछ कह रहे थे; पत्रवाहक तुम्हें सही रिपोर्ट नाम के साथ देगा। उनकी हाजिरी कम कर दो और हो सके तो और कुछ अपनी बुद्धि से करो ताकि उनकी यहाँ से सफ़ाई हो जाय और यह रोग फैलने न पाये अन्यथा समस्या

विषम हो जायेगी और समस्त किए कराये पर पानी फिर जायेगा।

तुमने रुपये के लिए जिसे जितना जितना कहा था; छबीले से दिला दिया। मुझसे आजकल में मिल लो क्योंकि कुछ नेताओं को जो सरकार विरोधी हैं परसों रात्रि में ९ बजे बुलाया है; उसकी विधि-व्यवस्था समझ ली जाय।

शेष मिलने पर।

स्नेही
कुबेराधिपति



[२]

डार्लिंग जड़न्तु;

आज तो मेरा होश उड़ गया था जब जूलूस मेरी ओर आ रहा है। मैं तो घर से बाहर जाने की तैयारी करने लगा था।

पर तुम्हारे निर्देशन में तुम्हारे सम्बन्धी और मेरे शिष्य कैंची ने जो सफाई से जुलूस कामेश्वर के बँगले की ओर मोड़ा उनकी दुर्गति करायी उससे प्राण में प्राण आया।

अब मुझे ऐसा विश्वास होने लगा है कि तुम्हारी नीति-मत्ता से मैं निश्चय ही कामेश्वर के पश्चात् यहाँ था सर्वोच्च प्रशासक हो जाऊँगा।

शाम को जरा काफी पर मिलना।

तुम्हारा ही
बाबा भोलेनाथ



[३]

प्रिय बड़न्तु,
शुभाशीष

आज ऐसा लगता है कि विधाता ही हमसे कुछ रुष्ट हैं अथवा इस समर-बेला में शैयासायी नहीं होता फिर भी तुम्हारे और बहन्तु के समर-संचालन विधि का मैं कायल हूँ।

एक बात बता दूँ कीचड़ से वे ज्यादा डरते हैं जिनका वस्त्र विशेष उज्वल होता है। जो उच्च पद पर आसीन होते हैं उनकी स्थिति भी उज्वल वस्त्रधर्त्ता की होती है। कीचड़ देख कर वे उसी तरह भागते हैं जैसे भैंसा छाता देखकर।

इसलिए इस तत्व को और अधिक बढ़ाने की आवश्यकता है।

प्रचार के लिए मैंने अपने प्रकाशक मालिक से कह दिया है और उसे यह लालच भी दे रखा है कि उसे भी शक्ति आने पर किसी उपयुक्त पद पर प्रतिष्ठित किया जायेगा। यद्यपि वह चाहता है कि उसको उसके सहगोती के पद पर प्रतिष्ठित किया जाय।

अभी तो सबसे काम लेते जाना है; भविष्य में जैसा मण्डल समझेगा करेगा।

कुबेर बहुत बदनाम हो गया है; इसलिए लक्ष्मी मात्र के लिए उसका उपयोग होना चाहिए।

एक बात और, गुदड़ लाल का मामला पुनः उभड़ने वाला है, इसलिए उस ओर से भी सावधानी बरतने की आवश्यकता है।

स्वार्थ और सिद्धि
....

शुभमास्तु;

शुभेच्छु
सर्वसोखा



[४]

शिष्यवर;

प्रणाम ।

आज जो रुख तुमने जनेश्वर वाले मामले में अपनाया वह सर्वथा प्रशंसनीय है। आज सारी नेतागिरी उनकी ...... चली गयी। एक बात जो कई बार मन में आयी कि तुमसे कह दूँ, न जाने क्यों वह कही नहीं जाती, बीच में ही आकर अटक जाती है?

आज दुखी हूँ इसलिए उस बात को तुम्हें लिख कर बता देना अपना कर्तव्य समझता हूँ। तुम मेरे लिए कुछ करो या न करो, मुझे संतोष होगा।

तुम यहाँ सबसे निम्नपद पर हुए। दो साल में पदोन्नत, पुनः दो साल में पदोन्नत; पुनः दो साल में पदोन्नत और फिर दो साल में पदोन्नत और इस प्रकार ८ वर्ष में ही सर्वोच्च स्थायीपद पर आसीन हो गए।

मैंने आज से २० साल पूर्व संसार की सर्वोच्च उपाधि अर्जित की पर आज तक जहाँ का तहाँ हूँ। जब-जब मण्डल ने संघर्ष का आरम्भ किया मैंने आगे बढ़कर अपने सीने पर सभी कष्ट झेले। इसका परिणाम यह हुआ। अब जाते-जवाते तो कुछ कर जाओ।

युद्ध में तुम्हारे साथ पिला हुआ हूँ। जो होगा साथ-साथ भोगा जायेगा। पर शक्ति आने पर मेरा क्लेम न भूलना।

मैं वकील से मिल आया हूँ यदि मैं न पहुँचा होता तो सारा काम ही गुड़ गोबर हो जाता।

गणेश से भी मिला था, उनके द्वारा चली गोटी पड़ पड़ गयी अब कुबेर को चाहिए कि वह किसी दूसरे अखाड़िया को खड़ा करें। बात-चीत आप उनसे कर लीजियेगा।

इस बात का ध्यान रखिये कि कुछ ऐसे लड़के जो हमारे कार्य आ रहे हैं उनमें कुछ भयवश हमारा साथ छोड़ समस्त भण्डाफोड़ करना चाहते हैं; ऐसी स्थिति में उन्हें संतुष्ट रखे रहना चाहिए और उनसे कुछ राइटिंग में ले रखना चाहिए हो सके तो सादे कागज पर दस्तखत करा लेना चाहिए।

मैं बाहर जा रहा हूँ; उसी काम से तीन-दिन के बाद भेंट होगी। अफवाह उड़ा देना साले की लड़की की शादी में गया हूँ

आपका
अगिया बैताल



[५]

प्रिय बहन्लु;
नमस्कार।

तुम मेरे मित्र और शिष्य हो। दुर्गति सहकर भी तुम्हें ऊपर उठाने में मेरा हाथ कम नहीं है।

यद्यपि मैं तुम्हीं लोगों के कारण बराबर गलत से गलत काम कर अधोगति को प्राप्त होता रहा हूँ पर यह कितने दुख की बात है कि तुमने मुझे परीक्षक तक नहीं बनाया।

मैं जानता हूँ कि तुम चाहते तो मेरा यह अदना कार्य अवश्य हो जाता पर अब बहानेबाजी से मुझे अधिक बहलाया नहीं जा सकता।

खैर; तुम्हारी करनी तुम्हें मुबारक।

मैं अब तटस्थ हो गया हूँ पर शिष्य होने के नाते तुम्हारे काम आऊँगा। यह तटस्थता नाटक ही है।

इस तटस्थता के माध्यम से मैं तुम लोगों तक सच्ची खबरें पहुँचवाता रहूँगा ताकि किसी भी स्थिति का तुम लोग सामना कर सको।

इस बीच मुझसे मिलते रहना तुम सबके लिए अच्छा नहीं होगा और मेरे लिए भी। गुदड़ का पुत्र हम सबके बीच धावन का कार्य करेगा।

विशेष अवसर हम कल्लू के यहाँ मिल लिया करेंगे।

कृपाकांक्षी—
बरें प्रसाद



[६]

प्रिय जड़न्तु को,
सुतवत प्यार।

कपिल मुनि की पत्नी आयीं थीं। उन्होंने तुम्हारा संदेशा कहा।

मैं पूर्ण रूप से तैयार हूँ। तीन शत मुद्रा पत्र वाहक से भेज रही हूँ।

मेरा आशीर्वाद और शक्ति तुम्हारे साथ है।

मैं महिला हूँ, इसलिए सक्रिय न हो सकूँगी फिर भी तुम्हारी सफलता के लिए मेरी शक्ति तुम्हारे साथ है।

मैं तुम्हें इस मंदिर के सर्वोच्च पदपर प्रतिष्ठित देखने के लिए भगवान भूत भावन से पावन प्रार्थना नित्य करती हूँ।

शुभेच्छिणी—
माताजी



[७]

बहन्तु जी,

कृपया आडिट रिपोर्ट की आपत्तियाँ स्पष्ट करें और विशेष रूप से यंत्रों के विषय में।

कुलपति

(१) मैंने आडिट रिपोर्ट देख ली है। यंत्र हैं, टूटेंगे ही, नये यंत्र भी टूटते हैं, इसलिए आडिट रिपोर्ट का उत्तर वह दे जो चपरासी उसकी देख-भाल करता है। इससे मेरा कोई साक्षात् सम्बन्ध नहीं है।

(२) वस्तुओं का उपयोग लड़कों के प्रयोग में होता है। प्रायः उनसे गलती होती है। वे सधे हुए भी नहीं होते इसलिए

सामान ज्यादा प्रयोग में खर्च करते हैं। इसलिए इस साल दूना सामान प्रयोग के लिए खर्च हुआ। स्टाक रखने और तौलने का कार्य स्टोर कीपर करता है; वही देता-लेता है इसलिए तत्सम्बन्धी आपत्तियों का समुचित उत्तर वह ही दे सकता है।

(३) भवन की सफाई में चूना चौगुना इसलिए लगा होगा कि मेरे पहले ठीक से चूना लगाने की व्यवस्था नहीं थी। यह कार्य क्लर्कों की देख रेख में होता है। अतः उनसे पूछिए।

(४) शेष आपत्तियों का उत्तर अपने कार्यालय में तैयार करालें।

(५) इससे बड़ी-बड़ी आपत्तियाँ अन्यत्र हैं। आपने उनसे भी पूछा है या केवल मुझसे ? यदि मुझसे ही तो आपकी जाँच राग-विराग पूर्ण है ?

जड़न्तु



[८]

प्रिय जड़न्तु जी,

नमस्कार।

आज आपकी कीर्ति देश-व्यापी हो रही है। यह मैं अब मान गया।

अनुतीर्ण छात्र को एक ऊँची कक्षा में सहज ही भरती करना आपका ही काम हो सकता है किसी दूसरे के बस की बात नहीं।

इस काम के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ; हृदय से और कामना करता हूँ कि तुम शीघ्र से शीघ्र उच्च से उच्च पद पर पहुँचो; ताकि हमारे जैसे तुम्हारे सहपाठियों का लाभ होता रहे।

सात मत-पत्र साथ है।

तुम्हारा ही
रसाचारी



यह मेरा संक्षिप्त परिचय है।

आचार्य सर्वसिद्ध



मैं अपने ढंग का अकेला आदमी हूँ। रवी बाबू की कविता 'एकला चलो रे ज्वान, एकला चलो' मेरे लिए प्रेरणामंत्र है। मैं सिद्धांतवादी आदमी हूँ लेकिन सिद्धान्त का प्रयोग उन पर ही करता हूँ जिन्हें कमजोर पाता हूँ। शक्ति का पूजक हूँ इसलिए उसपर प्रयोग करना अश्रद्धा मानता हूँ। "श्रद्धावान लभते ज्ञानं" जिसने लिखा उसको चाहिए था कि "धनं" "यशः" तथा "शक्ति" और जोड़ कर इसे पूर्ण कर दे। यह तथ्य मेरे अनुभव से सिद्ध है।

मैं किसी मण्डल का सदस्य नहीं क्योंकि शायर, सिंह, सपूत भेड़ नहीं भेड़िया होते हैं। मैं भी मौलिक हूँ इसलिए किसी में नहीं खप पाता हूं पर सामाजिक प्राणी हूं इसलिए सबको अपने में खपा लेता हूँ। सीधे सब कुछ निगल जाता हूँ; डकार तक नहीं लेता।

कोई भी आए; किसी पद पर भी क्यों न आये, किसी स्वभाव एवं रूप-रंग का क्यों न हो, किसी जाति और सम्प्रदाय का क्यों न हो, सबको मेरी सेवाओं के प्रति नतमस्तक होकर पदोन्नत करना पड़ता है। मण्डल के लोग इसके अपवाद कभी भी सिद्ध नहीं हो सकते।

लोग मुझ पर कुपित रहते हैं पर मैं जिनपर कुपित भी होता हूँ उनसे भी मिश्री की तरह मिठी बात करता हूँ। मेरी मिठी बातों एवं मेरे कार्यों का ऐसे लोगों पर वही प्रभाव होता है जो सममिश्रित घृत और मधु का।

मैं अपने मन से कुछ भी नहीं करता। जो मेरे अधिकारी कहते हैं,

उतना ही करता हूँ, लेकिन वे वही कहते हैं जो मैं उनसे कहवाना चाहता हूँ। मैं ऐसी स्थिति एवं परिस्थिति उत्पन्न कर देता हूँ कि उसको वही कहना ही पड़ता है।

मैं इस प्रकार अपनी जिम्मेदारी से बच जाता हूँ। यदि फँसता हूँ तो कह देता हूँ कि मैं नौकर आदमी हूं, जो हमारे अधिकारी की आज्ञा है, उसका प्रतिपालन करता हूँ। इस प्रकार अश्रेय अधिकारियों के जिम्मे पड़ता है और श्रेय मिलने पर मैं स्वयं हाथ जोड़कर खड़ा हो जाता हूं।

सभी अंधे नहीं होते, आँखवाले सरेख भी होते हैं। लेकिन इन सरेखों में से कुछ तो इसलिए कुछ मेरे विषय में नहीं बोलते कि मैं अधिकारियों की नाक का बाल हूँ, कुछ इसलिए नहीं बोलते कि मेरा नहीं, गलत कामों में अधिकारियों का दोष है क्योंकि मैं तो अदना कर्मचारी हूँ अधिकारियों का पिछ लगा, उनकी आज्ञा का पलन मात्र करता हूं। फिर भी अनेक ऐसे लोग हैं जो स्पष्ट मुझे और मेरे कृतित्व को पहचानते है पर वे बक-बका कर रह जाते हैं। ऐसों की मैं परवाह भी नहीं करता, और न ऐसों को मैं कोई महत्व ही देता हूँ क्योंकि वे निर्बल होते हैं। जो सदल हैं, उनकी चिन्ता इसलिए मुझे नहीं है कि न्यायप्रिय लोग दलीय जनों से उतना ही बचते हैं जितना काशी में राड़, साड़, सीढ़ी और सन्यासी से।

मैंने यहाँ बड़ी-बड़ी दुर्गतियाँ सही हैं। मेरा चदरा तक लोगों ने खींच लिया है, मुझे गाली देकर लोगों ने बात की है, मुझे मार डालने तक की धमकियाँ गुमनाम पत्रों में लोगों ने दी है पर मैं इन सबकी परवाह नहीं करता; आदी हो गया हूँ।

लोग इन बातों को कभी नहीं देखते; यह सबकी आँख में गड़ता

है कि मुझे और मेरे समस्त परिवार को निःशुल्क निवास, परिवहन के समस्त साधन निःशुल्क, अतिरिक्त सेवा का अतिरिक्त पुरस्कार मुझे क्यों मिलता है। औसत कार्य मुझे कितना करना पड़ता है, यह कोई नहीं देखता, इसके लिए सबकी आँखें फूट जाती हैं, इसलिए उनका सामान्य ब्यौरा देना अत्यन्त आवश्यक है।

विवरण	समय (घंटों) में
[क] अरिरिक्त कार्य	
हस्ताक्षर ६०० कागज पत्रों पर	
प्रति ह० = २ से०	१/२
पत्र तथा पत्रकों का पाठ ६०	
प्रति प० = १ मि०	
पत्र पत्रादि का उत्तर ३०	
प्रति उ० = २ मि०	१
प्रतिदिन एक कमेटी	
प्रति क० = १ घंटा	१
५० व्यक्तियों से भेंट	
प्रति० व्य० = ६ मि०	५
यात्रा ३० मील	
प्रति २० मील = १ घंटा	१ १/२
३ अधिकारियों से कार्य समझना	
प्रति अ० = १/२ घंटा	१ १/२
उत्सव आदि प्रति दिन १	
प्रति उ० = २ घंटा	२

अधीनस्थ कर्मचारियों का कार्य
निरीक्षण
प्रति दि० = १॥ घंटा   १½

१५ घंटे

[ख] पठन-पाठन

तीन घंटे प्रतिदिन
प्रति घं० = ४० मि०   २ घंटे
तीन अनुसंधान छात्र
प्रति छा० = ½ घंटे   १½ घंटे

प्रतिदिन का औसत कार्य का समय   १८½ घंटे

फुटकर

नहाना, धोना, निपटना, खाना, बाल-बच्चों
की शिक्षा-दीक्षा कठिनाई, मित्र-मिलन
आदि   २½ घंटे

कुल इक्कीस घण्टे मात्र   २१ घण्टे

यह सभी जानते हैं कि हिन्दुस्तान साइबेरिया नहीं है, यहाँ रात-दिन मात्र के होते हैं। इसमें केवल तीन घण्टे मात्र मैं सोता हूँ और कोई क्या चाहता है ?

जहाँ भी जाइए, मेरी सर्वत्र चर्चा होती रहती है। सभी लोग बराबर मेरी बुराई ही करते रहते हैं। मैं भी सोचता हूँ कि कोई कितनी बुराई करेगा, अन्त में थक ही तो जायेगा।

सुनता इसलिए भी हूँ कि मेरा घर द्वार गाँव गिराव अब मेरा अपना नहीं है; कभी का ऊजड़ ग्राम हो चुका है। इसलिए सब कुछ सुनते और सहते रहना है पर करना सब कुछ अपने मन का ही है। चाहे कोई आए, चाहे जाये।

इतना लिखने पर भी यदि किसी के समझ में कुछ नहीं आता है तो इसमें मेरा क्या दोष ?

केशव कहि न जाइ का कहिए

***

कीर्त्तिमंदिर के अतीत का कीर्त्तिमान इस बात का साक्षी है कि देश के अभ्युदय में इसका अपना अनन्य गौरवशाली स्थान रहा है। सबकी इसके प्रति अगाध श्रद्धा सदा से रही है और आज भी इसके प्रति समस्त देश की आसक्ति है। इसकी चिंत्य स्थिति से सारा देश धीरे-धीरे चिंतित हो उठा। अन्ततोगत्वा इसकी प्रगति के लिए उपाय ढूढ़ने के लिए तथा वर्त्तमान संक्रामक बुराइयों को दूर करने के लिए देश के सर्वमान्य पंचों द्वारा पंच-परिषद का गठन किया गया।

इस परिषद को सबका विश्वास प्राप्त था। मण्डलेश्वरों ने भी इसके प्रति आस्था और विश्वास प्रकट किया तथा इस स्थिति के उत्पन्न होने के कारणों को सहर्ष परिषद को बताया। निष्पक्षता पूर्वक परिषद ने साल-भर तक जाँच-पड़ताल की तथा उन सभी लोगों से यह परिषद मिला जो कुछ भी सुझाव देना चाहते थे।

परिषद के न्याय की उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा की जाने लगी। इस बीच मंदिर की दुर्गति के लिए उत्तरदायी दल भाँति भाँति से परिषद को प्रभावित करने का प्रयत्न करने लगे। किंतु परिषद सत्य पथ पर सूर्य की भाँति चलता रहा; ये प्रयत्न बरसाती नाले के जल से बह गये, प्रभाव हीन।

परिषद की जाँच-पड़ताल का सारांश निम्नाङ्कित रूप में प्रकाशित हुआ :—

कीर्ति मंदिर जाँच समिति

संक्षिप्त-प्रतिवेदन

कीर्ति-मंदिर जाँच समिति के हम सदस्य विभिन्न गवाहियों, कागज-पत्रों की जाँच पड़ताल तथा परस्पर विचार विनिमय द्वारा मंदिर के अभ्युदय के निमित्त एक मत से अपनी संस्तुति प्रस्तुत करते हैं :—

(१) [क] यह मंदिर इस पुनीत संकल्प से संस्थापित हुआ है कि ज्ञान विज्ञान, कला और संस्कृति की ऐसी आयतन शिक्षा-व्यवस्था की जाय ताकि युवक अपनी अमृत संस्कृति के अविरल प्रवाह को अक्षुण्ण रखते हुए विश्व में तत्संबन्धी सभी क्षेत्रों में नित नये कीर्त्तिमान जो पुनीत एवं लोक मंगल विधायक हों; उनकी स्थापना करते रहें। पर खेद का विषय है कि निरन्तर भौतिक अभ्युदय होते रहने पर भी भावी भाग्य-विधाताओं के भविष्य को यहाँ अन्धकार पूर्ण बनाया जा रहा है तथा अध्ययन-अध्यापन और चरित्र निर्माण के मूल तत्वों की उपेक्षा यहाँ चिन्ताजनक स्थिति में पहुँच गयी है।

[ख] १—हमारी दृष्टि में इसका मूल कारण यह है कि अपने मुख्य कार्य में रुचि न लेकर यहाँ के अध्यापक अन्य कार्यों में विशेष रस लेते हैं। यथा एक अध्यापक ने वर्ष भर में केवल ४० घंटे मंदिर को दिए। शेष समय अन्य कार्यों में जिसका मंदिर से कोई सम्बन्ध नहीं लगे रहे। ऐसे कार्यों से न केवल छात्रों को अध्ययन-हानि होती है अपितु उनमें अनुशासन हीनता फैलती है।

(२) ये अध्यापक स्वरचित पुस्तकें ही पाठ्य-ग्रन्थ के रूप में पढ़ाते हैं और ये पुस्तकें अपने प्रिय छात्रों से अपने नाम पर लिखवाते हैं इसलिए ज्ञान का प्रतिमान अधोगत होता जा रहा है।

(३) ये ही अध्यापक अपने विषयों के परीक्षक होते हैं अतएव अपनी त्रुटियों का ज्ञान इन्हें नहीं हो पाता। यदि वे स्वयं परीक्षक किसी कारण से नहीं हो पाते तो अपने ऐसे मित्रों को परीक्षक बनाते हैं जिन पर इनका पूर्ण अधिकार होता है। इस प्रकार छात्रों के सफलता की समस्त कुंजी इनके हाथ में आ जाती है जिसमें ये भेद-भाव दिखाते हैं।

(४) इस भेद-भाव का परिणाम यह होता है कि छात्रों में अध्यापक का स्नेह प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्द्धा होती है ? अध्ययन शील छात्रों में से अनेक इससे भ्रष्ट हो जाते हैं और अनेक का परिश्रम निरर्थक हो जाता है और ऐसे अनेक उत्तम छात्र होने का प्रमाण कर लेते हैं जो सर्वथा अयोग्य होते हैं।

(५) ऐसे ही अयोग्य योग्य लोग आगे चलकर अध्यापक होते हैं और दुष्चक्र अधोगति के पथ को और भी दृढ़ करता चल रहा है।

(६) अधिकांश अध्यापक नौकरी प्राप्ति के उपरान्त अध्ययन बंद कर देते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि उनका ज्ञान केवल बासी ही नहीं पड़ जाता है; जीर्ण भी हो जाता है।

(७) ये अध्यापक प्रशासनिक व्यवस्था में घुसने के फिराक में इतना अधिक व्यस्त और सक्रिय हो जाते हैं कि अवकाश के समय में भी वे सहज शांति की अवस्था का उपभोग नहीं कर पाते।

(८) प्रशासनिक महत्व के पदों का चुनाव होता है अतः अध्यापक चुनावों आदि में रुचि लेने के कारण अपना अपना दल बनाते हैं जिसका उद्देश्य होता है दूसरे अध्यापकों को लांछित और अपमानित करना ताकि दल विशेष के अध्यापकों की प्रतिष्ठा ऊपर उठे पर इस तरह सभी अध्यापकों की प्रतिष्ठा गिरती चली जा रही है।

(९) प्रशासनिक महत्व के पदों पर जो अध्यापक होते हैं; वे पदोन्नत हो जाते हैं; जिन अध्यापकों को पदोन्नत होना चाहिए; उनकी हानि इससे हो जाती है। प्रतिक्रिया स्वरूप वे भी राजनीतिक दल-दल में फँस जाते हैं और वही रास्ता हारकर ऐसे लोग अपना लेते हैं।

(१०) प्रशासकों की शक्ति इस बात पर निर्भर होती है कि चुन कर कौन और कैसे अध्यापक आते हैं। किसी भी प्रकार के अध्यापक जाय; प्रशासन पर नियंत्रण उनका ध्येय होता है। इसलिए प्रशासकों को इनसे निपटने में अपना अधिकांश समय नष्ट करना पड़ता है। इससे प्रशासन के कार्य को हानि पहुँचती है।

(११) जो लोग प्रशासन में सहायक हैं उनकी नियुक्ति दलों के अध्यापकों के प्रभाव के द्वारा होती है अतः ये भी दलीय होते हैं और प्रशासन के सामान्य काम में इनका सहयोग न प्राप्त होने के कारण प्रशासन का कार्य अस्त-व्यस्त हो जाता है।

(१२) अनेक सहायकों की आय उनके जीवन-मान के अनुसार नहीं है अतः वे अतिरिक्त आय के लिए भ्रष्ट आचरण करते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि प्रशासन बदनाम होता है।

(१३) प्रशासन सब पर एक साथ नियंत्रण नहीं कर सकता क्योंकि उसका अधिकार क्षेत्र एवं शक्ति सीमित है।

(१) इन सबका परिणाम यह होता है कि सब बुराइयों का असर छात्रों के भविष्य को अंधकारमय बनाता ही चला जा रहा है।

(२) इसका परिणाम यह भी होता है कि छात्रों के विकास में पाठ्येतर कार्य-क्रमों का समुचित उपयोग नहीं हो पाता अतः नागरिकता प्रसूत गुण-धर्मों की प्रतिष्ठा छात्रों में नहीं हो पाती।

(३) जीवन में प्रवेश करने के लिए आयोजित प्रतियोगिताओं में ये छात्र अपेक्षाकृत कम सफल होते हैं।

(४) मंदिर के धन का राजनीति के कारण सद्उपयोग न होने के कारण छात्रों के नव-निर्माण संबंधी कार्यों में बाधा पड़ती है।

(५) छात्रों का उपयोग निजी राजनीति में करने के कारण छात्रों का नागरिक जीवन भी भ्रष्ट होने की संभावना का स्पष्ट संकेत मिल रहा है।

इन सब कुछ प्रकट और कुछ गोप्य कारणों से हम सब निम्नांकित सुझाव प्रस्तुत करते हैं :—

(१) नियुक्ति तथा सेवा संबंधी :—

(क) ऐसे लोगों की नियुक्ति भविष्य में की जाय जिनकी योग्यता का परीक्षण मंदिर से असंबद्ध चरित्रवान विद्वान द्वारा की गयी हो।

(ख) नियुक्ति में उपाधि और चरित्र के साथ ही साथ अध्यापन की प्रायोगिक परीक्षा भी ली जाय।

(ग) कर्मचारियों की सेवा में उन्हें पूर्ण सुरक्षा मिले पर :—

(१) प्रत्येक वर्ष उनके द्वारा किए गए ज्ञान विकास के लिए प्रयत्नों और परिणामों का लेखा देखे बिना उन्नत और स्थायी न किया जाय।

(२) किसी भी चुनाव में कोई अध्यापक सेवा में रहते हुए भाग न ले।

(३) तीन से अधिक प्रश्न पत्रों का (अन्यत्र मिलाकर) वह परीक्षक न हो।

(४) उसकी कृतियों के प्रकाशन की व्यवस्था मंदिर द्वारा हो।

(५) प्रत्येक बीस छात्र के चरित्र-निर्माण के लिए वह उत्तरदायी हो।

(६) अध्यापकों द्वारा रचित पाठ्यपुस्तकों को तभी पाठ्यग्रन्थ में लगाया जाय जब उसका मूल्य लागत मूल्य से १५% अधिक न हो।

(घ) प्रथम बार उसकी नियुक्ति पाँच वर्षों के लिए हो पर—

(१) प्रतिवर्ष योग्य होने पर वेतन मान बढ़ता रहे।

(२) संचित कोष की भी व्यवस्था इस अवधि में हो।

(ङ) सेवा क्रम से विभागीय उन्नति हो।

(च) अवकाश की व्यवस्था यथावत रहे पर वर्ष में एक सप्ताह से अधिक कर्तव्य अवकाश न दिया जाय।

(छ) प्रशासन में अध्यापकों का चुनाव न हो अपितु क्रमशः प्रतिवर्ष श्रेष्ठता के आधार पर अध्यापकों को प्रतिष्ठित किया जाय और तब तक पुनः उन्हें न मनोनीत किया जाय जब तक उनका चक्र दुबारा प्रारंभ न हो।

(ज) किसी भी राजनीतिक दल का सदस्य अध्यापक नहीं हो सकता।

(झ) अध्यापकों के समस्त विवादों का निपटारा केवल कुल-गुरू द्वारा हो ।

(२) छात्रों संबंधी :—

[क] छात्रों को रुचि तथा योग्यता परीक्षण द्वारा अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा ।

[ख] कक्षाओं में ९५% उपस्थिति ।

[ग] छात्र किसी भी राजनीतिक दल से संबद्ध नहीं हो सकते ।

[घ] विभिन्न छात्र-परिषदों का चुनाव कक्षा प्रतिनिधियों द्वारा संपन्न हो पर ऐसे छात्र चुनाव के लिए अभ्यार्थी नहीं हो सकते :—

(१) जो तृतीय श्रेणी के हों ।

(२) जो अनुतीर्ण हुए हों ।

(३) जिनके चरित्र का प्रतिमान कभी भी स्खलित हुआ हो ।

(४) एक बार से अधिक के लिए चुनाव नही हो सकता ।

[ङ] रुचि, क्षमता, योग्यता के अनुसार व्यायाम, मनोरंजन एवं अन्य पाठ्येतर कार्यक्रमों में अनिवार्यतः निरन्तर भाग लेना ।

[च] पंचवर्षीय योजना में प्रतिवर्ष दो सप्ताह सुनियोजित योग-दान ।

प्रशासन

[क] छात्रों, अध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियों के लिए सुनियोजित, स्वस्थ, प्रगतिमूलक, विकासात्मक ऐसी सुसंबद्ध व्यवस्था ताकि एक दूसरे का कार्य स्नेह, सद्भाव, मंगल मूलक हो ।

[ख] पठन-पाठन एवं सम्बद्ध लोगों के लिए सुख-शांति के लिए पूर्ण व्यवस्था ।

[ग] नियम और विधान का तटस्था एवं दृढ़ता तथा निर्मलतापूर्वक प्रतिपालन ।

[घ] शुद्ध आहार, स्वस्थ मनोरंजन एवं आवास की उत्तम व्यवस्था।

[ङ] छात्रों एवं अध्यापकों के प्रगति-मान का निरीक्षण एवं योग्य तथा उचित परीक्षण व्यवस्था ।

[च] उच्चतम परीक्षा उत्तीर्ण करने पर एक साल के लिए अनिवार्य प्रायोगिक शिक्षा की व्यवस्था ।

[छ] इसके उपरान्त समावर्त्तन समारोह एक वर्ष पश्चात् और छात्र के लिए यथायोग्य कार्य की व्यवस्था ।

[ज] प्रत्येक छात्र के मासिक परीक्षा का व्यवस्था । यदि सभी मासिक परीक्षाओं में छात्र उतीर्ण हे तभी वार्षिक परीक्षा में प्रवेश की अनुमति प्रदान हो ।

[झ] कुलपति को यह अधिकार दिया जाय कि जो भी मंदिर की मर्यादा भंग करे उसे सफाई का पूर्ण अवसर देकर मंदिर से निष्कासित कर दें ।

[ट] कुलपति के न्याय में संदेह होने पर कुल-गुरु के यहां प्रतिवेदन दिया जा सकता है पर कुलगुरु का निर्णय अंतिम होगा ।

[ठ] उपाधि पत्र पर उन गुरुओं का नाम भी प्रकाशित होगा जिन्होंने छात्र को शिक्षा दी है !

इस स्थिति, परिस्थिति, नियम और व्यवस्था के लागू होने के पूर्व निम्नांकित कार्यवाही आवश्यक है :—

स्वार्थ और सिद्धि

[१] मंदिर की अधोगति के लिए उत्तरदायी जन पूर्ण जाँच और सफाई का मौका दिए जाने के बाद अपराधी सिद्ध होने पर तत्काल मंदिर से निष्कासित कर दिए जाय।

[२] कुलपति तक के संबंध में भी यह सिद्धान्त स्थिर है पर उन पर यदि आरोप सत्य न हुए तो आरोपक को मंदिर से अनिवार्यतः कृष्ण मुँख होना पड़ेगा। कुलपति के संबंध में एकांत कक्ष में कुलगुरु ही निर्णय कर सकते हैं।

अब आगे की सुनो हवाल

***

कीर्ति-मंदिर जाँच समिति का यह प्रतिवेदन मण्डलवालों के लिए जहर बाण सा लगा यद्यपि प्रबुद्ध वर्ग ने इसका हृदय से स्वागत-सत्कार किया। मण्डल किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो गया। मण्डल के लोग इस बात से घबड़ाए कि भविष्य में न हमें कठोर कर्तव्य-निर्वाह करना पड़ेगा अपितु यह भी संभावना है कि सेवा से कहीं हम पृथक न कर दिए जाय।

मण्डल के एकाध दब्बु लोग तो परदानसीन औरत बन गए और शेष भविष्य के कार्यक्रम के लिए अपनी शक्ति और श्रद्धा के अनुसार विचार-विनिमय में तल्लीन हो अपने निश्चयों को मूर्त्त रूप देने लगे।

वातावरण इतना गंभीर हो उठा कि देखने पर ज्ञात होता था कि अब शैक्षिक-वातावरण इस मंदिर में परिव्याप्त हो जायेगा। अध्ययन-अध्यापन प्रेमी चिन्तन-मननशील अध्यापक और छात्र मौन मुदित होने लगे।

मण्डल ने आज तक जो चाहा किया; उसके सम्मुख खड़ा होने का कभी किसी ने साहस तक नहीं किया था, पर अब उस पर सीधे डंके की चोट धावा बोला गया था, भला इसे वह कैसे बरदास्त कर सकता था ?

दो-चार दिन मंद शीतल समीर ने पुलकित हो मंदिर को स्पर्श कर शीतलता का अनुभव किया फिर जेठ का तप्त अंधड़ और तूफान। एक दिन समस्त मंदिर में जब सूरज उगनेवाला ही था लोग आँख मीचकर उठे तो देखते हैं गली, कूँचे, दर-दिवार और सबके कक्ष में एक कुछ वैसा ही परिपत्र, जैसे किसी काले कुरूप मनचले व्यक्ति के चेहरे पर चेचक के दाग हों; दीख पड़ा। इनका वितरण कब हुआ ? किसने किया यह तो लोग न जान सके पर क्यों हुआ यह सभी जान गए ? वह सरगरम परिपत्रक थाः—

कुलकलंक पति की काली करतूतें

पीठस्थविर का नंगा नाच : बिना टिकट के देखिए

अपने पावन मंदिर में

साथियों;

जिस मंदिर के नाम स्मरण से सारे पाप नष्ट हो जाते हैं उस मंदिर की छाती पर सवार हो आज कुलकलंक-पति ऐसी पिशाच लीला एवं नग्न तारडव कर रहा है कि महर्षि की आत्मा कराह उठी है।

सोइए मत, उठिए जागिए, महर्षि की मान रक्षा के लिए आपको उनका खून पुकर रहा है; आपको उनकी सौगंध है; आप व्रत लीजिए कि आप अब यह नग्न तारडव नहीं चलने देंगे।

आपको शायद नहीं मालूम यह कुल-कलंक पति बहुत बड़ा तिकड़म बाज है। हर कक्षा में तीन-तीन बार फेल हुआ है। अभी अभी कुछ दिन पहले यह जयचन्द और विभीषण का कार्य कर रहा था और आज अपनी तिकड़मबाजी से आपको बरबाद करने के लिए आपके सर पर भूत-पिशाच की भाँति बैठा दिया गया है।

इसका और पापी पीठ स्थविर का चोली दामन का सम्बन्ध है। दोनों ने अपने आश्रमों को मदिरालय बना दिया है। दोनों यह जानते हैं कि महर्षि के संकल्प के अनुार मन्दिर का संचालन करने पर उनकी गोटी नहीं बैठ सकती इसलिए यहाँ की सारी परम्परा और मर्यादा भंग करने पर ही वे उतारू नहीं हैं; वे उन्हें समूल यहाँ से नष्ट कर देना चाहते हैं। इसलिए मदिरा में प्रमत्त इन दोनों ने मिलकर कीर्ति-मन्दिर की जाँच

करायी। उसमें इन्होंने अपने सगे सम्बन्धियों को भर दिया और वे संबन्धी भी लोक-विदित पापी हैं। उन्होंने मन्दिर की भलाई के नाम पर महर्षि के नाम निशान को नष्ट कर डालने का आयोजन आरम्भ कर दिया है।

मन्दिर का बच्चा बच्चा जानता है कि महर्षि की आत्मा की शांति के लिए उन्हीं द्वारा प्रशस्त मार्ग उपयुक्त हो सकता है जो महर्षि के निकटस्थ हैं। वे मरे नहीं हैं; आज भी अपने द्वारा महर्षि को दिए गए वचनों के पालन के निमित्त खून-पसीना एक कर गरल सा अपमान का घूंट पीकर मन्दिर की सेवा कर रहे हैं। हम उनसे आग्रह करते हैं कि वे अब स्पष्ट घोषणा कर दें कि यह जुल्म अब और नहीं सहन किया जा सकता।

इस जाँच समिति ने मन्दिर की मर्यादा भंग की है। छात्रों एवं अध्यापकों के विरुद्ध विष-वमन किया है; इतना ही नहीं स्वयं पापी होकर हमें पापी और खुराफाती बताया है; अतः हम यह चेतावनी देते हैं कि जाँच समिति के एक भी निर्णय माने गए थे तो हम शान्त नहीं रहेंगे। इसका जो भी परिणाम होगा; इसकी जिम्मेदारी कुलपति और जाँच-समिति की होगी।

अतः जाँच समिति का समस्त प्रतिवेदन जला दिया जाय और इसके लिए उत्तरदायी कुलपति तत्काल त्याग-पत्र दे; अपना मुँह काला करें।

अगर ऐसा नहीं हुआ तो एक सप्ताह के पश्चात् हम संघर्ष छेड़ देंगे; और कुलकलंक पति को मन्दिर छोड़ने के लिए विवश कर देंगे।

भाइयों, उठो, जागो, मुर्दों की भाँति कब तक सोओगे; तुम्हें विद्या की सौगन्ध है, ये अधम इस तरह मंदिर नहीं छोड़नेवाले हैं अतः संघर्ष अनिवार्य है; शत्रु मजबूत है; तुम्हारा कर्तव्य तुम्हें पुकार रहा है।

आज नहीं; तो कभी नहीं का प्रश्न उपस्थित हो गया है। कीर्ति-मन्दिर की कीर्त्ति तुम्हें पुकार रही है, माँ सरस्वती ललचाए नेत्रों से तुम पर आश लगाए टकटकी बाँधे खड़ी हैं; तुम्हें जीना है, अगर सोए रह गए तो कल दुनियाँ तुम्हारे मुख पर अलकतरा पोते बिना न रहेगी। जागो, एक होकर इन्हें बता दो कि यहाँ तुम्हारी दाल नहीं गलेगी। गुरुजनों डरो नहीं; तुम भी हमारा साथ दो।

आगामी सोमवार को पूर्ण प्रदर्शन होगा
कीर्त्ति-मन्दिर—जिन्दाबाद
महर्षि—जिन्दाबाद
कुल कलंकपति—मुर्दाबाद

हम हैं
इस मन्दिर के भाग्यविधाता तथा शुभेच्छु

जाँच समिति का जिस समय प्रतिवेदन प्रकाशित हुआ था; उस समय मन्दिर को जानने-माननेवाले प्रत्येक व्यक्ति ने तत्काल उसके निश्चिय को कार्यान्वित करने की बात बड़े जोर से उठायी थी। पर इस गुब्बार का कुछ राजनीतिक दलों पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि इस स्थिति का लाभ ऐसे उठाना चाहिए कि मन्दिर पर हमारा कब्जा हो जाय। इसलिए उन्होंने दौड़-धूप आरम्भ कर दी और तीसरे दिन से ही मन्दिर के अन्दर और बाहर सभाएँ की जाने लगीं। यद्यपि इन सभाओं में दूषित घृणित व्यक्तिगत बातें जोश-खरोश से कहीं जाती थी तो भी झूठ इस तरह प्रसारित होने लगा; जैसे कभी सुरसा का शरीर हुआ था। इन राजनीतिक दलों की

एक मात्र मंशा यह थी, चाहे पासा चित्त पड़े या पट्ट; हमारे दल में कुछ न कुछ छात्र और अध्यापक इससे सम्मिलित हो जायेंगे।

आचार्य सर्वसोखा के हाथ में तो समाचार पत्र क्या उसका भाग्य-विधाता ही था। अनेक समाचार पत्रों में बहन्तुमण्डल ने अपने रिश्तेदार ढूढ़ निकाले। ऐसे समाचार पत्र अफवाहों द्वारा कीटाणु युद्ध करने लगे।

जिस दिन यह गन्दी नोटिस सर्वत्र प्रसारित हुई; उस दिन यद्यपि कुलपति इस मूढ़ता पर गम्भीरता पूर्वक मुस्कुरा रहे थे तोभी सोच रहे थे कि होम करते हुए हाथ जलने वाली कहावत आज कितनी खरी प्रमाणित हो रही है।

"जिसकी प्रतिष्ठा के खिलाफ जीवन में कभी कीचड़ का एक छींटा नहीं उछला; वह किस स्वार्थ से यहाँ पड़ा है। छोड़ दीजिए, ऐसी सेवा भी क्या जिसमें जीवन की सारी कमाई नष्ट हो जाय।"—कुलमाता ने एकान्त में संकुचित होते हुए कुलपति से आग्रह पूर्वक कहा।

"कर्त्तव्य ही हमारे जीवन की प्रेरणा शक्ति रही है। इसलिए उसके समक्ष यश की बातें कोई महत्व नहीं रखतीं। जिन्होंने हम पर विश्वास किया है; क्या उनके साथ विश्वासघात किया जाय। क्या इसलिए किसी को दवा देना चिकित्सक पसन्द नहीं करता कि यदि रोगी को आराम न हुआ तो यश-हानि होगी।"

इसी तरह की बातें उनके बीच हो ही रही थी कि कुछ सच्चे अध्यापक और ईमानदार छात्र तथा बहन्तुमण्डल की सेना के अप्रत्यक्ष जन वहाँ उपस्थित हो गए। सबने सलाह दी कि कड़ी से कड़ी कार्यवाही इस सम्बन्ध में होनी चाहिए।

"मन्दिर की नियामिका शक्ति स्वतः समुच्छ्रित नैतिकता है। यहाँ

की शान्ति को विच्छिन्न करनेवालों को भी स्वतः एक दिन अपने अनीति और भ्रष्टाचार पर मनः ताप होगा। मेरी दृष्टि में मन्दिर में किए जाने वाले अराजक कार्यों के दमन के लिए वे साधन अपनाना कथमपि उचित नहीं हो सकता जो साधन अपराधी लोगों द्वारा समाज की शान्ति भंग करनेवालों के साथ अपनाये जाते हैं। यह स्खलित आचार मेरे कार्य में बाधक नहीं हो सकता। जाइए आप सब अपना कर्तव्य कीजिए नैतिकता एवं शान्तिपूर्वक; यही हमारी आप से प्रार्थना है।"—कुलपति ने गम्भीरता पूर्वक कहते हुए लोगों को विदा किया।

विदा करने के उपरान्त कुलपति ने प्रशासन समिति की आवश्यक बैठक का तीसरे दिन के लिए आह्वान किया।

यह बात छिपी न रह सकी। बदन्तु मण्डल ने निश्चय किया कि राजनीतिक दलों के छात्रों को नेतृत्व प्रदान कर; कल से ही खुले आम युद्ध की घोषणा कर दी जाय ताकि डर कर कुलपति भाग जाँय और यहाँ के प्रशासन पर कब्जा कर लिया जाय।

दूसरे दिन सभा हुई जिसमें अनेक और लांछन के साथ कुलपति पर यह लांछन भी लगाया गया कि उसने हमें चुनौती दी है कि "हम अनैतिक हैं, भ्रष्टाचारी हैं इसलिए प्रशासन समिति की बैठक के पश्चात् अगर कुलपति मंदिर नहीं छोड़ते तो उनके विरुद्ध प्रत्यक्ष कार्यवाही होगी।"

आकाश में बादल मंडरा रहे थे और प्रशासन समिति के बैठक में कुलपति का यह पत्र पढ़ा जा रहा था :—

प्रिय सदस्यगण,
प्रशासन-समिति
कीर्ति-मन्दिर ।

आपने जिस आस्था और विश्वास के साथ मुझ पर कीर्ति-मंदिर के प्रशासन का भार सौंपा है उसके लिए मैं हृदय से कृतज्ञ हूँ । अपनी शक्ति भर मंदिर के निर्माण में दत्ताचित्त होकर मैं लगा था पर आज कुछ लोगों का विश्वास मुझ पर नहीं रह गया है । मेरे प्रयत्न उन्हें संदिग्ध लग रहे हैं । इसलिए उन्होंने मेरे लिए अपमान जनक स्थिति उत्पन्न कर दी है ।

कुलपति जो किसी भी विद्या मंदिर की प्रतिष्ठा का प्राण है आज यहाँ लांछित किया जा रहा है । इससे मंदिर का अपयश हो रहा है ।

अतः हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि कृपा कर मुझे कर्त्तव्य भार से तत्काल मुक्त किया जाय । मैं पुनः आप सबके सहयोग और सदभाव की प्रशंसा करता हूँ ।

भवदीय
कुलपति

सभी सदस्यों ने कुलपति के कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा की । आपके बार-बार अनुरोध करने पर भी लोगों ने अपना सर्वसम्मत निश्चय कर कुलपति को कर्त्तव्य निर्वाह के लिए विवश कर दिया । प्रशासन समिति का निश्चय था ।

"कुलपति का पत्र पढ़ा गया । उनके प्रति समिति अपनी अगाध अस्था और अनन्य विश्वास प्रकट करती है । उपद्रवी तत्वों द्वारा मंदिर

की शांति और मर्यादा भंग के कुकृत्यों को वह दुख और चिन्ता का विषय मानती है तथा उसकी भर्त्सना करती है।

समिति ऐसे योग्य कुलपति को मुक्त करने के लिए सर्वथा तैयार नहीं है अतएव उनसे निवेदन करती है कि वे ऐसी विषम स्थिति में मंदिर त्याग करके इस मंदिर के विनाश का कारण न बनें।

समिति अपने सम्पूर्ण अधिकार उन्हें कर्त्तव्य-निर्वाह तथा मंदिर की अभिवृद्धि के लिए सौंपती है। इस कर्त्तव्य-निर्वाह में समिति पूर्ण-रूप से उनके साथ है।"

× × ×

कर्त्तव्य और यश-रक्षा के युद्ध में कर्त्तव्य विजयी हुआ। पर कुलपति के मन का उद्वेग तथा उनकी गंभीरता उत्तरदायित्व के बोझ से और अधिक वजनी हो गयी।

वे घर आये। उसी दिन पहली-पहली बार उनके आश्रम पर उनका एक मात्र पुत्र और पुत्र बधु आए थे। उनसे वे बात करना चाहते थे पर मन भारी था। इधर नारा सुनायी पड़ा

कुल कलंक पतिः मुर्दाबाद

और लोगों ने देखा एक ओर से जूलूस उनके आश्रम पर पहुंच रहा है और दूसरी ओर से पुत्र-पुत्रबधू आश्रम से बाहर निकल रहे हैं।

यह जूलूस कुलपति का पुतला जला कर आ रहा था और इसी दिन कुलमाता से सिंदूर पोंछने की बात कामनष्ट नाटा ने की थी।

ऐसी घटना घटी कि जिससे सभी पीड़ित हो गए। कुलपति नहीं हिले; कर्त्तव्य की चेतना उस अंधकार में भी उन्हें प्रभा की दीप्ति से प्रदीप्त किए थी।

इस मन्दिर में एक विदेशी विद्वान अध्ययन और अध्यापन के निमित्त पधारे थे उन्होंने कृपा कर अपनी डायरी का उपयोग करने की अनुमति इस संबन्ध में देकर मेरे ऊपर महान कृपा की है। उसके कुछ पृष्ठ अनुदित रूप में यहाँ लिए जा रहे हैं।

१५ जुलाई, मंगलवार

मर्यादा, अनुशासन शिक्षा की जिस गंभीरता का अनुभव कर हमारे राज्य ने हमें यहाँ भेजा यदि मैं जानता कि यहाँ कि यह स्थिति है तो कदापि न आता।

किसी भी विद्या मंदिर का कुलपति यदि अध्यापकों एवं छात्रों की निर्मूल आलोचना का विषय बनाया जाता है तो निश्चय ही वह मंदिर न होकर एक अखाड़ा है, जहाँ केवल दाँव-पेंच का शासन नियामक हो सकता है। मनुष्यता के वे श्रेयस्कर गुण-धर्म जिन्हें मनुष्य ने लाखों वर्षों की तप-निष्ठा एवं साधना तथा संयम से प्राप्त किया है, उसका निर्दलन यदि चरित्र और ज्ञान निर्माण शाला में ही होता है तो विश्व में मनुष्यता के अन्यतम उद्धारक राष्ट्र का भविष्य क्या होने वाला है, भगवान ही जानें।

जिस देश ने, विद्या की शोभा विनय से होती है, ऐसा आदर्श जीवन में अपनाया हो उस देश में विद्यार्थी अपने गुरूओं द्वारा कुलपति के तिरस्कार के लिए उद्बोधित किए जाए। परम्परा का यह विनाश मेरी दृष्टि के सम्मुख हो रहा है।

सुना जाता है कि कुछ राजनीतिज्ञ अध्यापकों के गुप्त निर्देशन में छात्रों का एक दल कुलपति के आश्रम पर रात भर नारा लगाता रहा।

ऐसी भी चर्चा है कि कुलपति के परोक्ष में नहीं; उनके सम्मुख ही

एक राजनैतिक दल का छात्र कुलपति को देशद्रोही घोषित करने में गौरव का का अनुभव करता रहा ।

एक छात्र ने जब इसे अछात्रोचित और अमर्यादित बताया तो कुछ छात्रों ने उसे घेर कर भद्दी-भद्दी गालियाँ दीं और भविष्य के लिए उसे चेतावनी दी कि यदि वह उनका साथ न देगा तो उससे समझ लिया जायेगा ।

विद्या विनयेन शोभते

१८ जुलाई बृहस्पतिवार

देश के उन महान शिक्षण शास्त्रियों के पुतले आज जलाए गए; जिन्होंने आन्दोलन के इस रूप की भर्त्सना की है ।

उन्हें आज ऐसे ऐसे अपशब्द कहे गए जिन्हें सुन कर लज्जा भी शर्म से भस्म हो जायेगी ।

इतना ही नहीं एक छात्र ने ऐसी अभद्रता का प्रतिच्छेदन करना चाहा; उसे कुछ उच्छृंखल छात्रों ने पीटा भी ।

यद्यपि इन आन्दोलनकारियों के प्रति सहज सहानुभूति अधिकांश की नहीं दीख पड़ रही है तो भी गाली-भय, अपमान-भय, तथा मार-भय के कारण लोग मौन रह जाते हैं क्योंकि पीटे गए छात्र की कोई भी सहायता अधिकारियों द्वारा नहीं की जा सकी ।

इस भूमि में कर्तव्य नियामिका शक्ति आज तक केवल अनुशासन एवं मर्यादा-पालन रही है । ये बल की अपेक्षा मानवीय मनोभावों को प्रभावित करने वाली चेतना शक्तियाँ हैं । ये शक्तियाँ यहाँ अपनी दुर्गति देख समाधि अवस्था में चली गयी हैं ।

इस भूमि की सहज मर्यादा संहिता समाप्त प्रायः है। प्रायः रोज रात्रि में कभी जड़न्तु और कभी बहन्तु, कभी कवीश्वर, कभी अगिया बैताल और कभी कुबेराधिपति के घर पर आन्दोलन का सहज नेतृत्व करने वाले विश्वास प्रिय दो तीन छात्र-नेताओं के साथ बैठक होती है और अगला कार्य-क्रम स्थिर किया जाता है।

कुलपति के मस्तिष्क पर चिन्ता की एक रेखा भी न देख आन्दोलन कारी परेशान हैं और आन्दोलन का नेतृत्व उग्रता को बढ़ावा देने के पक्ष होता जा रहा है।

विद्या के समान दूसरा धन नहीं है।

---

२० जुलाई, शनिवार

आगामी बुधवार से विधिवत् हड़ताल की घोषणा कर दी गयी है।

अब छात्रों का नेतृत्व पूर्ण रूप से ऐसे लोगों के हाथ में आ गया है जो विशुद्ध हल्के स्तर के तथाकथित राजनीतिज्ञ नेता हैं। वे संक्रमण के प्रसार द्वारा अपने दल की स्थिति यहाँ दृढ़ करने पर लगे हुए हैं।

पैसे की कमी नहीं पड़ रही है। राजनीतिक चक्री अध्यापकों की तिजोरी तो खुल ही गयी है; जोर जबरदस्ती द्वारा छात्रों से चन्दा वसूल किया जा रहा है और इन सबकी न तो कोई रसीद है, न व्यय का विवरण।

कल भूतपूर्व छात्रों की, सायंकाल तथा नागरिकों की प्रातःकाल बैठक की गयी थी जिसमें यहां आन्दोलनकारी छात्र नेता, अध्यापकों के सम्बन्धी तथा दलदलीय राजनीतिक नेता ड्रेस बदल कर सम्मिलित हुए और किसी

भी बैठक में इतने अधिक आदमी नहीं हुए जिनकी संख्या अंगुलियों पर न गिनी जा सके।

इन दोनों बैठकों में भी एक ही ढंग के भाषण हुए; गंदे, मानिहानि जनक और ऐसे जैसे नशे का प्रलाप। इसके विरोध में बोलने वालों को भी अपमानित किया गया। सभा छोड़कर आधे से अधिक लोग चले आए पर उस बैठक में यही प्रस्ताव पास हुआ कि जाँच-समिति का निर्णय कार्यान्वित न किया जाय और कुलपति को तत्काल निष्कासित किया जाय।

विद्या मानवता की अन्यतम महान उपलब्धि है।

२२ जुलाई, सोमवार

गत रात्रि भर कुछ छात्र कुलपति के बंगले पर प्रदर्शन करते रहे और उन्हें बाहर आने के लिए ललकारते रहे।

कुलपति मध्य रात्रि में सिंह की तरह अकड़ते हुए अकेले बाहर आए। कुछ दूरी पर जड़न्तु और बहन्तु अकेले पेड़ की छाया में चोरों की भाँति छिपे खड़े थे।

कुलपति को देखते ही चिल्लानेवाले भींगी बिल्ली बन गए। एक ने साहस बटोर कर कहा, "कृपा कर मंदिर को छोड़ कर आप चले जाइए; आपने हमें और हमारे गुरुओं को बदनाम कराया है।"

"जब तक प्रशासन-समिति मुझे मुक्त नहीं करती तब तक मंदिर में मैं कर्त्तव्य-निर्वाह के लिए बाध्य हूँ।"

"तो हम आपको अब घेर रहे हैं, जाने न देंगे।"

"रास्ता रोक सकना जितना सरल है रास्ते पर चलनेवाले को रोकना

उतना ही दुरुह। बच्चों, जाओ रात हो गई है सोओ।"—मुसुकुराते हुए कुलपति ने कहा।

"नहीं मानेंगे, नहीं मानेंगे, जाने नहीं देंगे"—आवाजें।

एक घंटे तक लोग इस प्रकार कुलपति को रोके रहे; पर यह समाचार छात्रावासों में विद्युत-गति की भाँति फैल गया।

सैकड़ों छात्र जुलूस बनाकर वहाँ पहुँच गए। जुलूस में नारा लग रहा था, कुलपति : जिन्दाबाद।

अंधेर गर्दी : बन्द करो।

आवाज कानों में आते ही लड़न्तु, बहन्तु ऐसे सरके जैसे आहट पाकर बिलार भागता है। जूलूस निकट आता देख आन्दोलनकारी भी नौ दो ग्यारह हो गए।

जूलूस कुलपति के पास आकर मौन हो गया। उन्होंने उनसे बार-बार आग्रह किया कि कोई बात नहीं है, आप जाइए। पर वे दृढ़ थे कि रात्रि भर वे कुलपति के घर पहरा देंगे। जब कुलपति ने यह कहा कि यदि आप पहरा देंगे तो मैं भी यहीं टहलूँगा तब जाकर कहीं वे गए।

विद्या धर्म की धारक शक्ति है

२३ जुलाई, बृहस्पतिवार

कल की स्थिति ने आन्दोलन कारियों को क्रुद्ध और कुपित कर दिया। साथ ही उन्होंने यह भी अनुभव किया कि अगर घृणा की आग और नहीं बढ़ी तो कुलपति का अबकी बार निष्कासन संभव नहीं।

इसलिए एक लड़के को स्वयं मार कर लोगों में प्रचार किया गया

कि कुलपति ने इस लड़के को बुरी तरह रात्रि में पीटा। उन्होंने कुछ गुंडों को रात्रि में अपने बंगले पर छिपाकर रखा था जो आने-जानेवालों को डराते धमकाते हैं इसलिए रात्रि में हम लोग उनके बंगले में न्याय की आशा से गए थे।

पर न्याय के स्थान पर उन्होंने हमें गालियाँ दीं, पीटा और पीटवाया भी। हमारे भाइयों को झूठी खबर कर उन्हें बुला, हममें संघर्ष करा अपनी गोटी लाल करना चाहते थे।

इसके प्रतिकार स्वरूप शनिवार से एक लड़का आमरण अनशन पर बैठेगा। और अब उसी दिन से हड़ताल होगी।

एकाध अध्यापकों ने ऐसी स्थिति को उचित नहीं बताया और सलाह दी कि इससे मंदिर की हानि होगी। आन्दोलनकारियों ने केवल उनकी अवज्ञा ही नहीं की, उनको अपशब्द कहा और समझने की धमकी दी।

यदि कोई भी व्यक्ति इस स्थिति पर चिंता व्यक्त करता है तो उसे कुलपति का दलाल बताया जाता है और उसका सार्वजनिक रूप से अपमानित एवं लांछित करने का प्रयत्न किया जाता है।

इसका परिणाम यह भी हो रहा है कि सब कुछ जानते, समझते और बूझते हुए भी लोग सत्य की रक्षा उसी प्रकार करने लगे हैं जैसे सतीत्व की रक्षा इस देश में कभी घूँघट और सिंदूर ने की थी।

नाना प्रकार की अफवाहों से बाजार आज गर्म है पर छात्र बराबर अपनी कक्षा में पढ़ रहे हैं।

गुरु, ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं

२४ जुलाई, शुक्रवार

स्वार्थ और सिद्धि

एक गाय जिसके शरीर पर छुरे का वार था कुलपति-पथ से दौड़ती आयी उसके पीछे कुछ आन्दोलनकारी चिल्लाते हुए कि कुलपति की फुलवारी में यह गाय चर रही थी। और उन्होंने इसपर छुरे से वार कर दिया। यह पाप मन्दिर में हो रहा है।

कब तक लोग बरदास्त करेंगे। इस कृत्य से चारों ओर सनसनी फैल गयी पर सत्य यह है कि किसी आन्दोलनकारी ने ही योजना बद्ध रूप से यह कार्य किया था।

गाय तब तक लापता कर दी गयी जब तक कुछ प्रबुद्ध जन इस सम्बन्ध में छान-बीन करने निकले पर अफवाह बढ़ती ही गयी।

सायंकाल सभा हुई जिसमें भाषण इस ढंग के हुए कि "अधम पापी कुलपति तब तक यहाँ से नहीं जायेगा जब तक इसे गरदनियाँ देकर निकाला नहीं जायेगा। इसका पाप रावण की भाँति दिनोत्तर बढ़ता चला जा रहा है। कल से संघर्ष के अतिरिक्त और कोई चारा शेष नहीं रह गया है। यदि हड़ताल और अनशन के पूर्व यह यहाँ से नहीं चला जाता तो हम इसे धक्के देकर निकाल बाहर करेंगे।"

इस सभा का सभापतित्व किया स्वधन्यमान्य नेता बन्दर सिंह बकवासी ने।

कल क्या होगा इस सम्बन्ध में पूछने कुछ लोग कुलपति के यहाँ गए थे उन्होंने यह कहा कि मन्दिर का हित इसमें है कि मर्यादा प्रेमा-जन अपने पठन-गाठन में दत्त-चित्त से लगे रहकर अराजक तत्वों की उपेक्षा कर मन्दिर में शान्त-वातावरण बनाए रखें।

आज बहुत-सी अफवाहें रह रहकर चारो तरफ अधिकारियों के विरुद्ध फैलायी जा रही हैं कल क्या होगा सब इस विषय में ही सोच रहे हैं।

संसार का सर्वाधिक पवित्र मन्दिर पाठशाला है।

२५ जुलाई, शनिवार

जब लोगों ने आँखें खोलकर धैर्य त्याग किया तभी से लोगों के कान में तरह तरह के शब्द पड़ने लगे।

मन्दिर में सभी प्रवेश के द्वारों पर ताला लगा दिया गया। पाठालय कक्षों में बन्द तालों की तालियों पर अधिकार कर सात-सात आठ-आठ की टोलियों में छात्र बिखर गए।

इधर-उधर काम के बहाने मण्डल के अध्यापक भी। उनका काम था उचित सलाह गुप्त रूप से यथा अवसर देना।

किसी भी छात्र को पढ़ने नहीं जाने दिया गया। अध्यापकों के लिए भी बैठने तक को जगह नहीं मिली।

महिला छात्रों के साथ, जो पढ़ने के लिए कृतसंकल्प थीं अभद्र व्यवहार किया गया।

तमाशा देखने के लिए छात्रों का दल धीरे-धीरे अनशन स्थल पर पहुँचा।

अनशन करनेवाले छात्र ने घोषणा की कि मन्दिर की कीर्त्ति एक दो नहीं हजारों लाखों प्राणों से भी बढ़ कर है। मैं उसकी रक्षा के लिए तब तक अनशन करूँगा जब तक मुझमें प्राण है।

इस अनशन का कारण यह भी है कि आप सब सोए हैं; अपने कर्त्तव्य का निर्वाह नहीं कर रहे हैं। आपमें कर्त्तव्य चेतना जगाना भी इस अनशन का लक्ष्य है।

मैं जानता हूँ कलंकी कुलपति को, एक क्या लाख लोगों की आत्माहुति

पर भी वह यहाँ से जानेवाला नहीं क्योंकि उसे और ठिकाना कहीं नहीं मिलनेवाला है।

आज धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर मैं आपका आह्वान करता हूँ इस कलंकी से मन्दिर को पवित्र करने में मेरा साथ दीजिए।"

ऐसी घटनाओं को मैंने जीवन में कभी नहीं देखा था और कभी छात्र ऐसा कर सकते हैं, इसकी कल्पना भी नहीं की थी। अतः ग्लानि के भार से मैं यहाँ से आज ही अन्यत्र जा रहा हूँ शान्ति स्थापित होने पर पुनः आऊँगा।

बलिहारी वा गुरु की गोविन्द दियो बताय

इसके पश्चात् आचार्य सर्वसोखा के प्रकाशक द्वारा प्रकाशित "चालबाज" पत्र से उसके विशेष प्रतिनिधि 'दगाबाज' द्वारा दिए गए समाचार पढ़िये :—

ज्ञानधाम २६ जुलाई। यद्यपि रविवार के कारण ज्ञान धाम बन्द है तो भी सैकड़ों की संख्या में अनशनकारी छात्र के प्रति सहानुभूति प्रदर्शनार्थ छात्र दिन रात जमे हुए हैं। एक दिन में ही अनशनकारी का वजन २४ पौंड घट गया है; इस पर सभी क्षेत्रों में चिंता व्यक्त की जा रही है। अधिकारी निश्चिन्त हैं।

आज प्रातःकाल छात्रों का एक विशाल जूलूस निकला जो नम्रता-पूर्वक कुलपति से मंदिर छोड़ने की माँग कर रहा था।

मंदिर के अधिकारी इस स्थिति का लाभ उठा टेलीफोन द्वारा सरकार से सहायता प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हैं पर सरकार इस मामले में कोई भी सहायता करने के लिए तयार नहीं है; ऐसा ज्ञात हुआ है।



ज्ञानधाम, २७ जुलाई। अनशनकारी का वजन आज १२ पौंड और घट गया; उसे रात में नींद नहीं आयी। शांतिपूर्वक छात्र आन्दोलन चला रहे हैं पर अधिकारियों की उपेक्षा नीति के कारण स्थिति बिगड़ती जा रही है। आचार्य सर्वसोग्रा अस्वस्थ हैं तो भी वे शांतिस्थापन के लिए छात्रों को अपने घर पर बुलाकर समझा बुझा रहे हैं।

कल सायंकाल छात्रों की सभा में निश्चय किया गया कि कुलपति की अवज्ञा नीति के कारण उनके बंगले पर कल से घेरा डाला जायेगा और उन्हें तब तक किसी से मिलने जुलने नहीं दिया जायेगा जब तक वे कीर्ति-मन्दिर का पिण्ड नहीं छोड़ते।

यह बात लोगों की समझ में नहीं आती कि जब लोग कुलपति को नहीं चाहते तो जनतन्त्र के इस युग में भी उनको अपने लिए अराजकता की स्थिति उत्पन्न करने से क्या लाभ।

ज्ञानधाम, २७ जुलाई। आज अनशनकारी छात्र का वजन ८ पौंड और घट गया। इस प्रकार उसका समस्त वजन ४५ पौंड घट गया। आज उसका वजन ६० पौंड मात्र है। रात्रि में नींद नहीं आयी। छात्र दिन रात उसे घेरे पड़े हैं। यदि ऐसी स्थिति रही तो हालत और भी खराब हो जाने की संभावना है।

आज छात्रों ने कुलपति आश्रम पर जब अहिंसा पूर्वक घेरा डालने का प्रयत्न किया तो कुछ छात्रों के प्रतिरोध करने पर कुलपति के आश्रम पर ढेलेबाजी की गयी। कहा जाता है कि यह ढेलेबाजी छात्रों को बदनाम करने के लिए स्वयं अधिकारियों ने करायी है।

यद्यपि छात्र किसी को कुलपति से नहीं मिलने दे रहे हैं तो भी उनकी पत्नी उनके साथ हैं। कुलपति टेलीफोन द्वारा केन्द्रीय कार्यालय

का संचालन घर बैठे कर रहे हैं। उनके घर पर बिजली की बत्तियाँ जलती पायी गयीं और कल में पानी भी आ रहा है। कुलपति का संबंध बाहर से टेलीफोन द्वारा बना हुआ है।

ऐसा पता चला है कि गणेश इस मंदिर में कुलपति के रूप में पुनः आ रहे हैं और उन्होंने छात्र नेताओं को शांति पूर्वक छात्र-आन्दोलन चलाते रहने की सलाह दी है साथ ही उन्होंने यह भी कहा है कि किसी स्थिति में भी वे उभाड़े जाने पर भी हिंसक न हों।

मंदिर की समस्त दीवारों पर यह लिखा हुआ दिखा कि कुलकलंक पति मंदिर छोड़ो। आन्दोलनकारियों का कहना है कि यह उनकी ओर से नहीं, उन्हें बदनाम करने के लिए किसीने लिखवाया है।

विद्यालय में अब छात्र पढ़ने नहीं जा रहे हैं। इस स्थिति से सभी राजनीतिक दल चिंतित हैं और सायंकाल की छात्रों की सभा में आन्दोलन को और अधिक सक्रिय बनाने के उपायों पर विचार किया जायेगा।



ज्ञान धाम, २८ जुलाई। कल की छात्रों की सभा के निश्चयानुसार आज केन्द्रीय कार्यालय पर भी घेरा डाल दिया गया। टेलीफोन के संबंध विच्छिन्न हो गए। रात्रि में कुलपति का आश्रम प्रकाश हीन दीखा। मंदिर का कोई छात्र या अधिकारी भी घृणा के कारण कुलपति से मिलने नहीं गया। कहा जाता है कि कुलपति ने एक महीने के लिए पहले से ही भोजन-पानी की व्यवस्था कर ली है।

यह भी ज्ञात हुआ कि कुलपति को सरकार ने टकासा जवाब दिया है कि वह इस मामला में किसी भी प्रकार की सहायता करने में सर्वथा

असमर्थ है और एक मंत्री ने तो इस आन्दोलनकारियों की आर्थिक सहायता की है साथ ही अपने पुत्र को आन्दोलनकारियों की सभा में बराबर भेज कर उन्होंने अपनी स्थिति को सांकेतिक ढंग से स्पष्ट भी कर दिया है।

अनशनकारी छात्र का वजन आज ५ पौंड और घट गया है जिससे छात्र की स्थिति घोर चिन्ताजनक और खतरे की बतायी जा रही है। इससे छात्रों में अत्यधिक उत्तेजना परिव्याप्त हो गयी है। अब मंदिर में कुलपति का एक भी समर्थक शेष नहीं रह गया है फिर भी कुलपति अपने हठ पर डटे हुए हैं। इसका परिणाम भयावह हो सकता है।

ऐसी चर्चा भी है कि यदि चौबीस घंटे के भीतर कुलपति यहाँ से नहीं चले गए तो छात्रों और मंदिर की हानि की रक्षा के लिए प्रशासन पर पूर्ण कब्जा कर पठन-पाठन तथा प्रशासन का कार्य सुचारु ढंग से चलाने की नयी व्यवस्था आन्दोलनकारी करेंगे।

ज्ञानधाम, २६ जुलाई। आन्दोलनकारियों द्वारा गत निश्चय के अनुसार समस्त विद्यालय पर कब्जा कर लिया गया। अगला कदम प्रशासन के सुचारु संचालन की व्यवस्था के संबंध में गंभीरतापूर्वक उठाया जायेगा। आज प्रशासन-समिति के सदस्य कुलपति से मिलने गए थे। घेरा डालनेवाले छात्रों ने किसी भी अधिकारी से उन्हें तभी मिलने देने का अपना निश्चय दुहराया जब वे कुलपति को यहाँ से तत्काल निष्कासित करने का आदेश दें। छात्रों की बात अनसुनी कर देने पर उन्हें मंदिर में ही अलग अलग घेर रखा गया है तथा उनके भोजन पानी और आराम की समुचित व्यवस्था कर दी गयी है।

यह भी ज्ञात हुआ है कुलपति अब मंदिर छोड़ने के लिए तयार हो

गए हैं। लोगों का कहना है कि यही पहले कर दिया गया होता तो ऐसी स्थिति क्यों उत्पन्न होती। प्रशासन-समिति के लोग अपने निश्चय पर दृढ़ हैं। इसका परिणाम और भी भयावह होने की संभावना है।

भूतपूर्व कुलपति श्री गणेश ने अधिकारियों के इस नीति की घोर आलोचना की है तथा इस स्थिति के लिए अधिकारियों को जिम्मेदार बताया है।

अनशनकारी छात्र से कोई मिलने-जुलने नहीं दिया जा रहा है। ऐसी चिकित्सकों की राय से किया गया है। अध्यापक और कर्मचारी भी अब मौन न रहेंगे।

प्रशासन की व्यवस्था का नवीन प्रबंध होते ही अनशनकारी अपना अनशन भंग कर देगा। यह बात विश्वस्त रूप से ज्ञात हुई है।

ज्ञान धाम, २० जुलाई।

आज मंदिर के समस्त कर्मचारियों की सभा आचार्य कुबेराधिपति के आह्वान पर हुई। इस सभा में सर्वश्री जड़न्तु, बहन्तु, अगिया बैताल आदि प्रमुख विद्वानों ने वर्तमान विषम स्थिति पर अपने विचार व्यक्त कर छात्रों की उचित माँग मान लेने का अनुरोध शासन-समिति से किया तथा अनशनकारी छात्र से प्रार्थना की कि हम उसके साथ हैं; अतः वह अनशन की समाप्ति करे। सभा अत्यन्त गंभीर वातावरण में हुई। इसके बाद एक जुलूस ने अनशनकारी छात्र के पास जाकर अपने निश्चय से उसे अवगत कराया। छात्र अपने निश्चय पर दृढ़ है कि जब तक प्रशासन से कुलपति हटाए नहीं जाते मुझे मरना ही पसंद है।

इसके पश्चात् छात्रों की एक सभा हुई, जिसमें अनेक राजनीतिक

नेता भी थे, यह निश्चय किया गया कि श्री गणेश सर्वसम्मिति से कुलपति चुने जाते हैं, वे जिस पद पर जिसे भी चाहें प्रतिष्ठित करें।

१ अगस्त को दिन में दो बजे से उनके कार्य-भार ग्रहण का समारोह मनाया जायेगा। अनशनकारी छात्र ६ बजे उसी दिन अपना अनशन भंग कर अपने हाथ से श्री गणेश को जय-माल पहना देगा।

*

इन समाचारों से देश में तहलका मच गया। उसी दिन वायुयान से अनेक पत्रकार ज्ञानधाम पहुँच गए। उन्होंने सारी स्थिति का सर्वेक्षण कर जो समाचार भेजे उनका आशय एक ही था उनमें से एक यहाँ दिया जा रहा है :—

कीर्त्ति-मंदिर, कीर्त्ति-धाम शिक्षा का विशिष्ट केन्द्र है। यहाँ की स्थिति विगत अनेक वर्षों से चिन्त्य और गंभीर है। यहाँ अनेक शासक शिक्षा-विद् और प्रशासक आए पर स्थिति पर नियन्त्रण न पा सके। इसलिए सभी गुण संपन्न वर्त्तमान कुलपति को सर्व शक्ति सम्पन्न समझकर यहाँ प्रतिष्ठित किया गया। यहाँ के प्रशासन की स्थिति को कुछ अध्यापक, उनसे संबद्ध छात्र एवं कुछ सौदागर राजनीतिज्ञ बराबर अपनी पदाभिलाषा एवं स्वार्थ के लिए विषम बनाए रखते हैं। इस स्थिति की जाँच के पश्चात् प्रस्तुत प्रतिवेदन के कारण उनमें विक्षोभ व्याप्त हो गया क्योंकि प्रतिवेदन में उनके तत्काल निष्कासन की बात कही गयी है।

इसलिए ऐसे लोग जिनकी सदा विजय होती रही है; उन्होंने अंतिम विजय के लिए यह संघर्ष आरोपित किया है। ऐसी आम चर्चा सर्वत्र है। वर्त्तमान कुलपति ने स्थिति का सामना दृढ़तापूर्वक किया है इस लिए वे विशेष रूप से इस दल के कोप भाजन हुए क्योंकि इससे भी

सामान्य स्थिति में अपमान सहन न कर सकने के कारण अन्य कुलपति यहाँ से अपनी प्रतिष्ठा बचाकर चले जाते रहे हैं। पर ये दृढ़ संकल्प हैं।

तटस्थ छात्रों में प्रभाव डालने के लिए छात्र अनशन पर बैठा दिया गया है। उसके सहयोगी एक छात्र का कहना है कि उसे मरने नहीं दिया जायेगा क्योंकि मैं उसे रात्रि में रसगुल्ला खिलाता हूँ और उन्होंने अपनी चालाकी का वर्णन करते हुए यह भी बताया कि अनशन कारी के कमरे में ही नहाने-धोने और निपटने की व्यवस्था की गयी है। डाक्टरों में से सभी जो अनशन कारी के स्थिति का परीक्षण करते हैं वे भी उस मण्डल के ही आदमी हैं जो कीर्त्ति-मंदिर की अधोगति के लिए जिम्मेदार है। ऐसा ज्ञात हुआ है कि उनकी तत् संबन्धी विज्ञप्तियाँ सत्य नहीं।

कुलपति और प्रशासन समिति के सदस्यों से हमें मिलने नहीं दिया गया पर हमारे आवागमन एवं यहाँ रहने की व्यवस्था का व्ययभार एवं कुछ और भी पुरस्कार स्वरुप राजनीतिक ढंग से देने की बात एक सज्जन ने यहाँ उठायी यदि हम आन्दोलन के पक्ष में समाचार भेजने को तैयार हों तो। जो छात्र घेरा डालते हैं उनको पाँच रुपये रोज, पूड़ी, कचौड़ी आदि वहीं से मुफ्त में आता है। परिपत्रक, माइक आदि की भी व्यवस्था मुफ्त में है। आन्दोलन के पूरे खर्च का अनुमान लगभग पचास हजार रुपये है। ये रुपये कहाँ से और कैसे आए यह ज्ञात नहीं हो पा रहा है।

कुलपति के आश्रम के दरवाजे और शीशे फूटे हुए हैं। दीवालें अभद्र वाक्यों से गंदी कर दी गयी हैं। महिलाओं के साथ भी अभद्र व्यवहार की सूचनाएँ मिली हैं। मंदिर के अधिकांश लोग कुलपति के शील, संयम एवं योग्यता के समर्थक हैं पर वे मौन हैं क्योंकि उनको

न केवल अपमानित किया जाता है अपितु इस बात का भी भय है कि यहाँ कोई भी कुलपति टिकने नहीं पाता, ये भी नहीं टिक पायेंगे। अगर इनका समर्थन अपमान सहकर किया भी गया तो निश्चय ही बाद में एक एक से बीन बीन कर बदला लिया जायेगा।

यहाँ की व्यवस्था में नियंत्रण का साधन अधिकारियों के हाथ में कुछ भी नहीं है। यदि अन्यत्र किसी को घेर लिया गया होता, टेलीफोन काट लिया गया होता, किसी को बंदी बना दिया गया होता, लोगों का सार्वजनिक अपमान षड्यंत्र द्वारा किया गया होता; कहीं की शांति भंग की गयी होती, किसी मालिक को जबरदस्ती उसके प्रदेश से निकालने का आयोजन किया गया होता, किसी दूसरे के कार्यों में दस्तन्दाजी की गयी होती तो ऐसे लोग डाका, चोरी, षड्यन्त्र आदि के अपराध में जेलकी हवा खाते होते। यहाँ जहाँ पवित्र चारित्रिक निर्माण का कार्य हो रहा हो वहाँ ऐसे जघन्य अपराधों के लिए तो और भी पाप गंभीर हो जाता है, जहाँ कोई व्यवस्था और नियमन नहीं।

ऐसे भी समाचार मिले हैं कि लोगों के मुख पर कालिख पोतकर जबरदस्ती उन्हें गदहे पर बैठा कर जूलूस निकाला गया। उनका अपराध मात्र यह था कि उन्होंने कुल मर्यादा की रक्षा के लिए इन तरीकों की भर्त्सना की थी।

यहाँ वही आ सकता है, जो आन्दोलनकारियों का प्रिय हो। अन्य लोगों को मन्दिर में घुसने तक नहीं दिया जाता। कुछ राजनीतिक नेता इस ताक में हैं कि इस आन्दोलन के जरिए छात्रों का एक वर्ग उनके दल में सम्मिलित हो जायेगा। गणेश जी को यह मोदक खिलाया गया है कि वे पुनः कुलपति बना दिए जायेंगे। स्वार्थ का साम्राज्य सत्य के

सूर्य को यहाँ निगलता चला जा रहा है। ऐसा लगता है कि सारे देश में व्याप्त अन्धेरगर्दी यहाँ सिमट कर छा गई है। यहाँ अगर सत्य की विजय नहीं हुई तो देश में अन्धेरगर्दी और अनैतिकता का साम्राज्य छा जायगा।

दुर्भाग्य की बात तो यह है कि यहाँ का एक छात्र ही आज इस कुल का प्रधान रक्षक है। यद्यपि वे इस स्थिति के संहार के लिए दृढ़-संकल्प और कृत्य-निश्चय हैं तो भी उनकी ओर से सक्रिय कदम आज तक नहीं उठाया गया।

कुलपति पर जो आरोप हैं वे झूठे हैं। क्योंकि जाँच समिति के वे सदस्य तक नहीं थे। प्रशासन-समिति निर्दोष है। ये बावेले मुझे लगता है, इसीलिए हैं कि कहीं दूसरा कुलपति आ गया तो मामला शान्त हो जायेगा; दब जायेगा। कहा जाता है कि गणेश जी ने उन्हें वचन भी दे दिया है।

कल सूर्योदय की प्रथम किरण के साथ ही कीर्त्ति-मन्दिर में एक भयंकर उपद्रव होने की संम्भावना है जब कुलपति को जबरन निष्कासित कर गणेश को कुलपति के पद पर बैठाने का आयोजन किया जायेगा।

आन्दोलनकारियों को ऐसा विश्वास है जब आवागमन के समस्त साधनों पर, प्रशासन की पूर्ण व्यवस्था पर उन्होंने अधिकार कर लिया और सरकार ने हस्तक्षेप नहीं किया तो कल भी नहीं करेगी; क्योंकि सरकार तो वोट पर चलती है इसलिए वह सब कुछ सह सकती है पर वोटरों को नाराज नहीं कर सकती। वह भी पढ़े लिखे सुप्रभावशाली वोटर ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे नहीं।

स्वार्थ और सिद्धि

विश्वस्त सूत्र से यह ज्ञात हुआ है कि आन्दोलनकारियों ने कोई कागज लिख रखा है। जिस पर वे प्रशासन-समिति को हस्ताक्षर करने के लिए बाध्य करेंगे।

इस स्थिति से लोग में बड़ी सनसनी है तथा प्रबुद्ध लोग इसकी मौन भर्त्सना कर रहे हैं।

महाराज हम नापित हैं

***

रात बड़ी भयावना थी, उल्लासमय भी। उल्लास से लसित और विलसित वे थे जिनके मण्डल को कल राजपाट मिलनेवाला था; उनके साथ ऐसे तटस्थ निर्वीय वे भी; जो यह समझकर कि अब विजय इनकी ही है; समय का लाभ उठाने के लिए इनसे आ मिले थे। भयाक्रान्त वे थे जिन्होंने सत्य और सदाचार की बलि निरन्तर चढ़ते देखी थी और कुछ करना चाहकर भी कुछ कर नहीं पाते थे। भयमिश्रित उल्लास उनमें था जो दोनों पक्षों के प्रति शील संकोच रखते हुए भी केवल वार्त्ता तक ही अपने को सीमित रखे हुए थे।

इस भयावने संकट के समय भी कुलपति अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ और प्रशासन समिति अपने निश्चय पर अटल। दोनों व्रज की भाँति दृढ़, हिमालय की भाँति अलंख्य और प्रशान्त महासागर की भाँति गंभीर। कोई भी आहुति देने के लिए वे तैयार थे।

गणेश अपने निवास में बैठे उस घड़ी की तयारी कर रहे थे जब उनके सिर पर पगड़ी होगी। कौन सा वेष वे धारण करके जायँगे यह सोच भी नहीं पाते थे। कैसे जायँगे यह तो पहले ही निश्चय हो गया है; तामजान पर। वे ही उन्हें कंधा लगाकर ले जायेंगे जिन्होंने उन्हें कभी मंदिर से निष्कासित किया था। उनकी प्रसन्नता आज गगनचुम्बी थी।

सर्व श्री जड़न्तु, बहन्तु, सर्वसोखा; अगियाबैताल और कुबेर अपने गणों के साथ आज उतने ही प्रसन्न और व्यस्त थे जितने बारात के आयोजक और संयोजक।

रात्रि में ही बादल छा गये खून के रंग के, जो जमे रहे। इसलिए ऊषा के आगमन का आज किसी को पता नहीं चला पर अभियान कभी रुकता नहीं जैसे म्यान से निकली किसी योद्धा की असि।

मण्डलाधीश इधर-उधर बिखर गए। नाच और गाने के साथ होली के जूलूस के समान जूलूस मस्त और प्रयोजन के समय गाली गाने वालियों की तरह प्रमत्त पर अनियंत्रित मोद से युक्त। तमाशबीन भी इनके साथ।

अनशनकारी की जय बोलता जूलूस पहले उसके यहाँ गया जहाँ संतरे का रस पीते हुए अनशनकारी ने कहा, "इस आश्वासन पर मैं अनशन भंग कर रहा हूँ कि आप करेंगे या मरेंगे। जाइए आप सफल हों।"

जूलूस आगे बढ़ा। अब उसमें गाली की प्रधानता और सिनेमा के रास्ता-नाच का प्रभाव बढ़ गया था। सबने यह मान लिया था कि कुलपति की दुर्गति अब चंद मिनटों में ही होगी। इधर कुलपति और कुलमाता दृढ़ अजेय मुद्रा में।

जूलूस अब कुलपति के आश्रम के द्वार से दस गज की दूरी पर था और जूलूस का नारा गालियों के कोलाहल में विलुप्त हो गया था। कुछ सड़क पर स्थित कंकड़ पत्थर भी कुलपति-आश्रम में फेंके जाने लगे। इसी समय मोटरों की आवाजें सुनायी पड़ीं। आवाजें तीन ओर से आ रही थीं। लोग देखें कि किधर से आवाज आ रही है तब तक तीनों ओर से पुलिस ही पुलिस।

जूलूसवाले ऐसे भागे जैसे सियारों का समूह सिंह देखकर। सड़क पदत्राण से पट गया। कुछ मंडल के अध्यापक भागती हुई भीड़ को

क्रांति का असफल संदेश देकर हार गए, कोई भी साथ नहीं रहा। इस पर उन्होंने तत्काल तेल, लकड़ी लेने के लिये निकलने की बात करनी शुरू कर दी।



सायंकाल समाचार पत्रों में दलीय राजनीतिज्ञों का वक्तव्य इस आशय का प्रकाशित हुआ कि मन्दिर में पुलिस का प्रवेश घोर अनैतिक एवं अपमान जनक है यह सब कुल रक्षक ने किया है इसलिए कुलपति के साथ वे भी जाय। इतना ही नहीं उन्होंने कुल रक्षक को भी घेर कर झाँव-झाँव करना आरम्भ कर दिया। कुछ समय तक तो वे सुनते रहे फिर उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा, "उस समय निश्चय ही पुलिस अपवित्र थी जब हम गुलाम थे क्योंकि उसका उपयोग हमारे बन्धन को दृढ़ करने के लिए होता था, आज वह उतनी ही पवित्र है जितना पवित्र देश का कोई भी वर्ग हो सकता है क्योंकि शांति-मर्यादा नियम-संस्थापन की वह वहाँ संस्थापिका है जहाँ समस्त नैतिक प्रतिमान अपनी उपयोगिता नष्ट कर देते हैं।"

"वर्तमान कुलपति गम्भीरता पूर्वक, साहस और नैतिकता पूर्वक जिस स्थिति का सामना कर रहे हैं, वह एक अन्यतम प्रतिमान की शिक्षा के क्षेत्र में स्थापना है। इस प्रतिमान की रक्षा, जब तक समस्त अराजक तत्वों का परिलोप नहीं हो जाता, की जायेगी और कीर्ति-मन्दिर जाँच समिति के समस्त निश्चयों का दृढ़ता पूर्वक प्रतिपालन होगा। इसी एक मन्दिर की नहीं, राष्ट्र के अधिकांश मन्दिरों की यही स्थिति है, यह तो एक स्थान पर किया जाने वाला प्रयोग मात्र है।"

इस पर उन्होंने बहुत उछल-कूद की। गुमनाम पत्रों का ढेर लग गया; पर सभी दृढ़। जड़न्तु-बहन्तु मण्डल नाना प्रकार से साम-दाम-

दण्ड-भेद इनको दिखा रहा है पर ये सभी असफल होते चले जा रहे हैं और लोग प्रतिष्ठा कर रहे हैं सत्य की जय का। पर मण्डल की माया आज भी प्रेत बन कर गोलकुण्डा के किले की रक्षा उसी प्रकार कर रही है जैसे कभी औरंगजेब के समय बास की कड़ने और कागजों ने की थी



कुल रक्षक महोदय
कीर्ति-मन्दिर
ज्ञान-धाम।

मान्यवर,

सत्य की रक्षा नैतिक प्रतिमान की स्थापना एवं अराजक तत्वों के निर्मूलन की आपकी बातों का मैं प्रशंसक हूँ पर उनका कार्यान्वय हो सकेगा या नहीं?

और हो सकेगा तो कब?

इसलिए जानना चाहता हूं मेरे भी बाल-बच्चे हैं उनके भविष्य की मुझे भी चिन्ता है? और आज उन्हें भेजा जाय तो कहाँ? गलने वाली कागज की उपाधियाँ मात्र जीवन की नाव नहीं बन पायेंगी और जग तो अथाह सागर ठहरा।

भवदीय
सत्यार्थी

लेखक की कुछ रचनाएँ

आलोचना :: प्रसाद की कविताएँ
प्रसाद काव्य-कोश
कामायनी-समीक्षा
कृति और कृतिकार
हिन्दी साहित्य १६५४
हिन्दी साहित्य और साहित्यक

निबन्ध :: सदासुहागिन रूठ गई
प्रेरणा के प्रतीक
अन्नपूर्णा
अमर-साहित्यकार

उपन्यास :: साझ-सकारे
स्वार्थ और सिद्धि

काव्य :: नीहारिका
जो गाता हूँ

नाटक :: अवशेष

विविध :: मुद्रा और बैंक
मुद्रा और बैंक के सिद्धान्त
आधुनिक परिवहन
तथा अन्य दर्जनों पुस्तकें